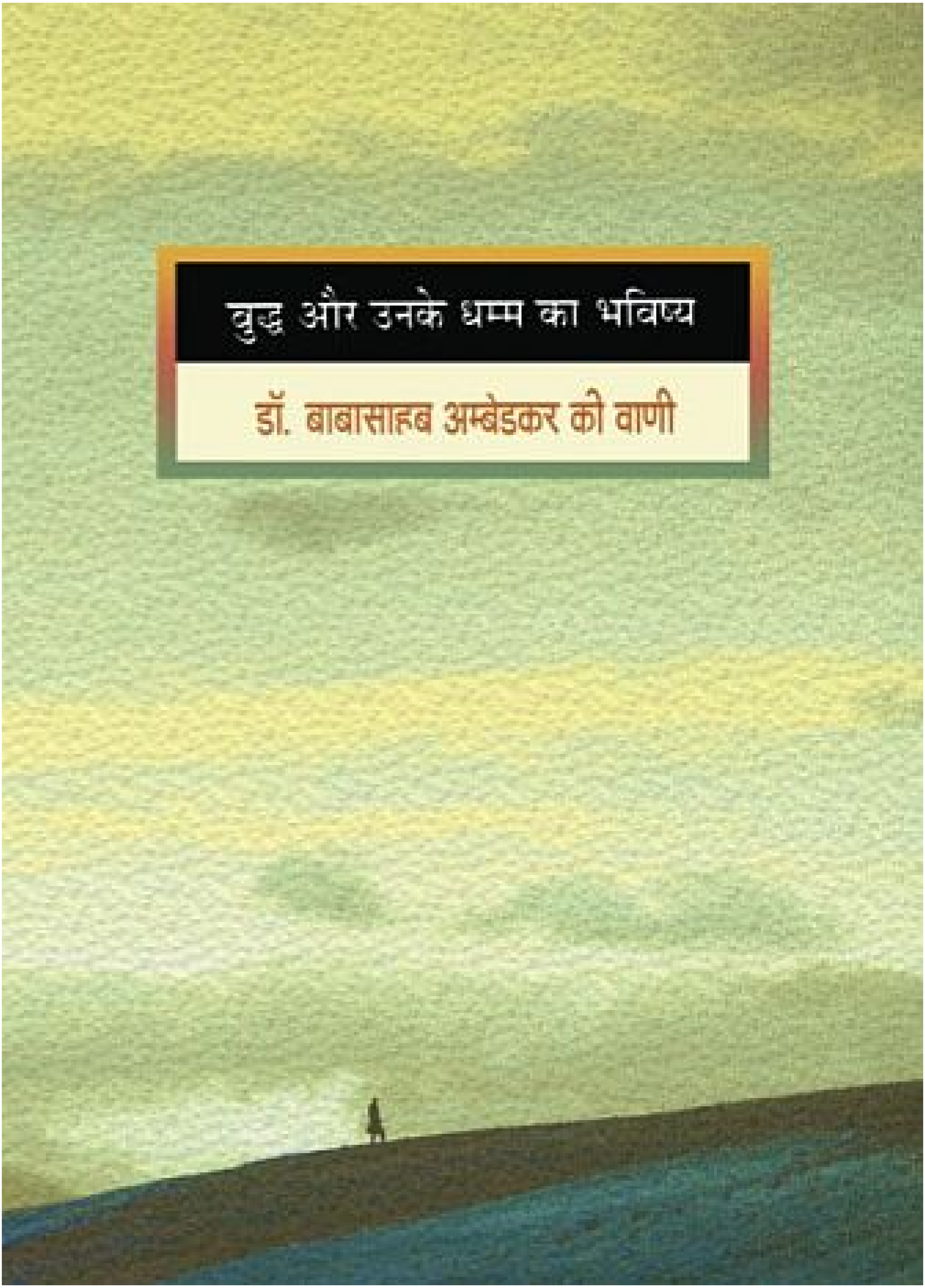
बुद्ध और उनके धम्म का भविष्य

डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर की वाणी



नमो बुद्धाय

NAMO SAKYAMUNI BUDDHA



May every living being, drowning and adrift, Soon return to the Pure land of Limitless Light!
Namo Amitabha!

बुद्ध और उनके धम्म का भविष्य

डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर की वाणी

Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org
Mobile Web: m.budaedu.org
This book is strictly for free distribution, it is not for sale.
यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नही ।

बुद्ध और उनके धम्म का भविष्य

BUDDHA AND HIS DHAMMA IN THE FUTURE

लेखक

बोधिसत्व डा. भीमराव आम्बेडकर

अनुवाद

धम्मचारी विमलकीर्ती

१९९६

भूमिका

१९५० में बौद्ध धम्म का स्वीकार करने के निश्चय करने के साथ - साथ ही डा. बाबासाहेब अम्बेड़कर ने उनके भविष्य के बारे में भी गहरा चिंतन किया था। विषमता रहित नये भारत के निर्माण हेतु वे स्वयं बरसों से चिंतन एवं संघर्ष करते रहे। १९४७ को भारत आजाद हुआ। संविधान सभा ने डा. अम्बेडकर को संविधान के मसौदा समिति का अध्यक्ष चुनकर एक ऐतिहासिक कदम उठाया। संविधान के जरिए हर भारतवासी के लिए एक मनुष्य, एक मूल्य और एक मत का तत्व अपनाकर भारत देश राजनैतिक दृष्टि से समानता को प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता, समता एवं बंधुता पर आधारित नव समाज के निर्माण कार्य में एक कदम आगे बढा। फिर भी वर पर्याप्त नहीं था। क्यों कि यह तत्व अभी राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक जीवन में लागू होने थे। इसलिए २९ नवंबर १९४९ को भारतीय संविधान सभा में संविधान पारित होते समय उन्होंने राष्ट्र को चेतावनी दी थी की "२६ जनवरी १९५० को हम राजनैतिक जीवन में समान होंगे और सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में असमान। हमें इस विषमता को जल्द से जल्द हटाना होगा, वरना उस विषमता के शिकार हुए लोग राजनैतिक प्रजातंत्र का यह ढाँचा उखाडकर फेंक देंगे।"

चूँ कि समाज का नियमन केवल कानून से नहीं

होता इसलिए जरुरत होती है नैतिकता की, नैतिकता पर आधारित धर्म की । डा. अम्बेडकर इसका सही महत्व पहचानते थे । इसीलिए इस निबन्ध में कहते हैं - ''यदि नये जगत् को - और यह ध्यान रहे कि यह नया जगत् पुराने जगत् से सर्वथा भिन्न है - किसी धर्म को अपनाना ही हो - और नये जगत् को पुराने जगत् की अपेक्षा धर्म की अत्यधिक जरुरत है - तो वह बुद्ध का धम्म ही हो सकता है ।''

डा. अम्बेडकर की मान्यता थी कि वर्ण-व्यवस्था पर आधारित विषमताग्रस्त समाज को समता में ढालने के लिए बौद्ध धम्म के सिवाय कोई चारा नहीं है । लेकिन वह बौद्ध धम्म आधुनिक युग में कैसे लागू होता है ? और उसके प्रचार और प्रसार के लिए क्या करना चाहिए ? इन प्रश्नों पर आधारित उनका चिन्तन यहां प्रस्तुत है, उनकी अपनी भाषामें। यह लेख सर्व प्रथम महाबोधि सोसायटी, कलकत्ता की मासिक पत्रिका 'महाबोधि' में मई १९५० में प्रकाशित हुआ था । उसका हिंदी में अनुवाद करने की तथा छपाने की अनुमति देने के कारण हम उनके आभारी है ।

धम्मचारी विमलकीर्ती
धम्मचक्र प्रवर्तन महाविहार,
दापोडी, पुणे - ४११ ०१२.
तारीख : १७ जनवरी १९९६.

बुद्ध और उनके धम्म का भविष्य

भाग १

कई धर्म संस्थापकों में से ऐसे चार धर्म संस्थापक हैं जिनके धर्मोंने न केवल भूतकाल में विश्व को प्रेरणा दी थी बल्कि आज भी कतिपय लागोंको वैसे ही प्रभावित कर रहे हैं। वे हैं बुद्ध, ईसा मसिह, मोहम्मद और कृष्ण। इन चारों के व्यक्तित्व की और अपने धर्म के प्रचारार्थ उन्होंने अपनाए हुए ढंगों की एक ओर बुद्ध से और दूसरी ओर बाकी सब के साथ तुलना करने पर ऐसी कुछ भिन्नताओं का रहस्योद्‌घाटन होता है जो महत्वहीन नहीं है।

पहली बात जो बुद्ध को शेष सभी से निराला ठहराती है, वह है उनके व्यक्तिगत महात्म्य का त्याग। बाइबल की पूरी किताब में ईसा मसिह ने जोर देकर इस बात को कहा है कि वे साक्षात् ईश्वरपुत्र हैं और जो लोग ईश्वर के राज्य - स्वर्ग - में प्रवेश करना चाहते हैं, उनके सभी प्रयास विफल ही होंगे अगर उन्होंने ईसा मसिह को ईश्वरपुत्र के रूप में स्वीकार नहीं किया। मुहम्मद इससे भी एक कदम आगे बढे। ईसा मसिह के समान उन्होंने भी ऐसा दावा किया कि वे धरती पर खुदा के पैगंबर याने दूत बनकर आये हैं। लेकिन उन्होंने आगे इस बात को जोर देकर कहा कि वे खुदा के आखरी पैगंबर हैं। इसी कारण से उन्होंने यह घोषणा की, कि मुक्ति चाहनेवालों को न केवल उन्हें खुदा का पैगंबर मानना पडेगा बल्कि यह भी स्वीकार करना होगा कि वह आखरी पैगंबर हैं। कृष्ण तो ईसा मसिह और मुहम्मद से भी और एक कदम आगे बढ़े। केवल ईश्वरपुत्र अथवा खुदा का पैगंबर बनने से संतुष्ट होना उन्हें

स्वीकार नहीं था। खुदा का आखरी पैगंबर बनने में भी उन्हें कोई तृप्ती नहीं थी। इतना ही नहीं बल्कि अपने आप को ईश्वर कहलाने से भी वे तृप्त नहीं हुए। उन्होंने दावा किया कि वे खुद साक्षात् 'परमेश्वर' हैं या उनके भक्तगण की मान्यता के अनुसार 'देवाधिदेव' हैं। इस प्रकार अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को बलात प्रस्थापित करने की अहंकार भरी चेष्टा बुद्ध ने कभी नहीं की। उन्होंने एक मनुष्य के पुत्र होने के नाते जन्म पाया था, और एक साधारण पुरुष बने रहने में तथा एक साधारण पुरुष के नाते अपनी धम्मदेसना देने में वह संतुष्ट थे। उन्होंने कभी अपनी जन्म अलौकिक होने की या तो अपने पास कोई अलौकिक शक्ति होने की बात नहीं की, ना ही अपनी अलौकिक शक्ति के प्रदर्शन हेतु कोई चमत्कार दिखाए। बुद्ध ने मार्गदाता और मोक्षदाता में स्पष्ट भेद किया। ईसा मसिह, मुहम्मद और कृष्ण ने अपने आप को *मोक्षदाता* की भूमिका में कायम किया। मात्र बुद्ध *मार्गदाता* की भूमिका निभाने से संतुष्ट थे।

इन चार धर्म-संस्थापकों के बीच और भी एक भेद है। ईसा मसिह और मुहम्मद इन दोनों ने भी यह दावा किया हैं कि उनकी शिक्षा स्खलनशील याने झूठ साबित होनेवाली नहीं है और इसलिए किसी भी संदेह से परे है। कृष्ण ने तो स्वयं को देवाधिदेव घोषित किया था। इसलिए उसने जो कुछ शिक्षा दी वह ईश्वरवाणी होने से तथा प्रत्यक्ष ईश्वरमुख से प्रकट होने से तो असली और अंतिम थी ही, और उसके स्खलनशील या झूठ होने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता था। बुद्ध ने अपनी शिक्षा के लिए अस्खलनशील या झूठ साबित न होने का कोई दावा नहीं किया है। *'महापरिनिब्बाणसुत्त'* में आनंद को संबोधित कर उन्होंने बताया है कि उनका धम्म तर्कसंगत और अनुभव पर आधारित

है और उनके अनुयायियों को चाहिए कि वे इस शिक्षा को केवल इस कारण सही और स्वीकारणीय हीं माने कि वह उन (बुद्ध) से प्राप्त हुई है। यह शिक्षा तर्कसंगत और अनुभव पर आधारित होने से यदि किसी समय और किसी विशेष स्थिति में वह लागू नहीं होती हो, तो वे (अनुयायी) चाहे तो उसमें सुधार कर सकते हैं, या तो गैरलागू शिक्षा को त्याग भी सकते हैं। वे चाहते थे कि उनके धम्मपर भूतकाल के मुर्दा बोझ न लादे जाएं। वे चाहते थे कि उनका धम्म सदाबहार रहे और सभी समय काम आएं यही कारण था कि जरुरत पड़ने पर अपने अनुयायियों को उन्होंने अपनी शिक्षा में समयानुकूल काट - छाँट करने की स्वतंत्रता दे रखी है। ऐसा करने का साहस अन्य किसी भी धर्म-संस्थापक ने नहीं दिखाया है। वे ऐसी स्वतंत्रता देने से डरते थे। कारण उन्हें इस बात का डर था कि अनुयायियों को अपनी शिक्षा में सुधार करने की स्वतंत्रता देने से कहीं वे उसका इस्तेमाल अपने बन-बनाये ढाँचे को गिराने में न करें। बुद्ध को ऐसा डर नहीं था। उनको अपनी शिक्षा की नींब पर पूरा भरोसा था। वे भलीभाँती जानते थे कि सब से भयंकर मूर्तिभंजक भी उनके धम्म के आंतरिक हिस्से को नष्ट नहीं कर पाएगा।

भाग २

ऐसी है बुद्ध की अद्वितीय अवस्था। लेकिन उनके धम्म की अवस्था कैसी है ? उनके विपक्षियों द्वारा स्थापित धर्मों के साथ वह कैसे मेल खाता है ?

आइए, तो पहले हम बौद्ध धम्म की तुलना हिंदु धर्म से करें। यहाँ उपलब्ध इस थोड़ी सी जगह में इस तुलना को बहुत सीमित रखना ही पड़ेगा केवल दो मुद्दों तक ही।

हिंदु धर्म एक ऐसा धर्म है जो सदाचार पर आधारित नहीं है । जो कुछ सदाचार हम उसमें देखते हैं वह उसका अखण्डात्मक अंग नहीं हैं। उसका निर्माण धर्म के ढाँचे से जुड़ा नहीं है । वह एक पृथक् शक्ति है, जो हिंदु धर्म के आदर्शों के नहीं अपितु सामाजिक आवश्यकताओं के कारण टिकी हुई है । बुद्ध का धम्म ही सदाचार है । यह धम्म के ढाँचे क़ी आंतरिक रचना से जुड़ी चीज हैं । बुद्ध धम्म अगर सदाचार से परे हो तो धम्म नहीं रहता । यह सच है कि बौद्ध धम्म में ईश्वर नहीं है । ईश्वर के स्थान पर वहाँ सदाचार स्थापित है । दूसरे धर्मों में ईश्वर का जो स्थान है, वही बौद्ध धम्म में सदाचार का है।

बुद्ध ने 'धम्म' शब्द की सब से क्रांतिकारी व्याख्या की है, यह बात शायद ही समझी जाती है । 'धम्म' शब्द का वैदिकों ने किया अर्थ किसी भी तरह सदाचार नहीं दर्शाता । धर्म को जिस अर्थ में ब्राह्मणों ने स्पष्ट किया है और जिस अर्थ मे जैमिनी के पूर्व मीमांसा में प्रतिपादित किया गया है, वह कुछ कर्मों के करने के सिवाय अथवा और रोमन लोगों के शब्दों में धार्मिक आचार-विधिओं के सिवाय और कुछ नहीं था । ब्राह्मणों के विचार में धर्म के माने यज्ञ-याग और उन में देवताओं को दिये जानेवाले पशुबलि का कर्मकाण्ड़ इतना ही अर्थ था । ब्राह्मणों के वैदिक धर्म का यही सार था । सदाचार से उसका कोई सरोकार नहीं था ।

बुद्ध ने *'धम्म'* शब्द का प्रयोग जिस अर्थ से किया है उसका धार्मिक आचार-विधि तथा कर्मकांड़ से कोई सरोकार नहीं था । वास्ताविक उन्होंने यज्ञ-याग को धर्म का सार मानने से साफ इन्कार किया है । उन्होंने धर्म का सार माने गये कर्मकाण्ड़ की जगह सदाचार की स्थापना की । यद्यपि धम्म शब्द का प्रयोग ब्राह्मण आचार्य और बुद्ध दोनों ने भी किया है, लेकिन इन दोनों की दृष्टि में इस शब्द का अर्थ

मूलतः क्रांतिकारी भेद रखता है। वास्तविकता के तौर पर तो हम यूँ कह सकते हैं कि बुद्ध विश्व के पहले ऐसे धर्म संस्थापक है जिन्होंने सदाचार को धर्म का सार तथा नींव बनाया। कृष्ण भी, जैसा कि भगवद् गीता से देखा जा सकता है, अपने आप को धर्म की यज्ञ-याग जैसे कर्मकाण्ड के बराबर होने की संकल्पना से पृथक् नहीं कर सके थे। कृष्णद्वारा भगवद् गीता में चर्चित *निष्काम कर्म* अथवा *अनासक्तियोग* के दर्शन से काफी लोग मंत्रमुग्ध हुए नजर आते हैं। बच्चों के स्काऊट में जिस प्रकार किसी इनाम की आशा किए बगैर नेकी से अपना काम करने की शिक्षा दी जाती है, कुछ बैसे ही अर्थ से यह बात वहाँ कही गयी है। वह उसके वास्तविक अर्थ से परे तथा संपूर्णतया गलत अर्थ से कही गयी है। *निष्काम कर्म* इस शब्दप्रयोग से कर्म करने की क्रिया के अर्थ से किया गया 'कर्म' नहीं समझा गया है। अपितु ब्राह्मणों ने और जैमिनी ने मूलतः उसका जिस अर्थ से प्रयोग किया है उसी (यज्ञ-याजनादि कर्मकाण्ड़ के) अर्थ से उसका गीता में प्रयोग किया गया है। कर्मकाण्ड़ के मुद्दे को लेकर जैमिनी और भगवद् गीता में एक ही अंतर है। ब्राह्मण जिस कर्मकाण्ड़ के आदी थे उसके दो प्रकार थे : १) नित्य कर्म और २) नैमित्तिक कर्म।

नित्य कर्म वह कर्मकाण्ड़ था जिस का हर रोज लगातार पालन करना जरुरी समझा जाता था। इसी कारण उसे नित्य कहा गया था और उसका धार्मिकता के तौर पर पालन कर जाने के कारण उसे निष्काम याने किसी प्राप्ति की आशा से परे माना गया था। इसी कारण उन्हें निष्काम कर्म कहा जाता था। दूसरे प्रकार के कर्म *नैमित्तिक* कहलाते थे, जिसके माने यह था कि वे समय आने पर अर्थात् किसी प्रकार की कामना निर्माण होने पर किए जाते थे। उन्हें *काम्य कर्म* भी

कहा जाता था क्योंकि उनके करने से कुछ फल प्राप्ती की आशा की जाती थी । कृष्ण ने भगवद् गीता में जिन कर्मों की निन्दा की, वे थे काम्य कर्म । उसने निष्काम कर्मों की निन्दा नहीं की । उलट उनकी भूरी भूरी प्रशंसा की है । यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि कृष्ण के विचार में भी धर्म सदाचार को लेकर नहीं बनता था बल्कि यज्ञ, यजनादि कर्मकाण्ड़ को लेकर बनता था, चाहे वह कर्मकाण्ड़ *निष्काम कर्म* प्रकार का भी क्यों न हो ।

हिंदु धर्म और बौद्ध धम्म में विसंगती दिखानेवाली यह एक बात है। विसंगती की दूसरी बात, हिंदु धर्म का अधिकृत दर्शन असमानता पर आधारित है, इस वास्तविकता से संबंधित है । क्योंकि हिंदु धर्म का चातुर्वर्ण्य का सिद्धान्त इस असमानता का ठोस रूप है । इसके विपरित बुद्ध समानता के समर्थक थे । वे चातुर्वर्ण्य के कट्टर विरोधी थे । उन्होंने न केवल उसके विरुद्ध प्रचार किया और नहीं केवल उसके खिलाफ संघर्ष छेडा, लेकिन उसको जड़ से उखाड़ फेंकने की हरदम कोशिश की । हिंदु धर्म की शिक्षा के अनुसार न केवल शूद्र को, परंतु नारी को भी, धर्मोपदेशक बनने का अधिकार नहीं था । न ही वे संन्यास ले सकते थे और ईश्वर तक पहुँच सकते थे । बुद्ध ने दूसरी ओर शूद्रों को भी भिक्षु संघ में दाखिल किया । उन्होंने नारी को भी भिक्षुणी बनने की अनुज्ञा दी । उन्होंने ऐसा क्यों किया ? लगता है कि बुद्ध ने उठाए इन कदमों का वास्तविक महत्व बहुत कम लोग समझ पाये हैं । इसका उत्तर यही है कि असमानता की शिक्षा को नष्ट करने के लिए बुद्ध बिल्कुल ठोस कदम उठाना चाहते थे । बुद्ध द्वारा किये गये इन आघातों के कारण ही हिंदु धर्म को अपने सिद्धान्तों में काफी परिवर्तन करने पड़े । हिंदु धर्म ने हिंसा का त्या किया । वह वेदों के अस्खलनशील होने का

दावा भी छोड़ देने पर राजी था । चातुर्वर्ण्य के मामले में दोनों में से कोई भी झुकने के लिए तैयार न था। बुद्ध चातुर्वर्ण्य की शिक्षा के खिलाफ अपना विरोध छोडने के लिए तैयार नहीं थे । यही कारण है कि ब्राह्मण जैन धर्म की अपेक्षा बुद्ध धम्म के विरुद्ध अधिक घृणा और शत्रुता जताता है । हिंदु धर्म को चातुर्वर्ण्य के खिलाफ किए बुद्ध के तर्कों का लोहा मानना ही पड़ा । वह उसने बौद्ध धम्म की दलीलों की शक्ति के सामने झुककर नहीं माना, बल्कि चातुर्वर्ण्य के लिए एक नया दार्शनिक तर्क ढूँढ़ कर माना । यह नया दार्शनिक तर्क भगवद् गीता में मिलता है। कोई भी व्यक्ति भरोसे के साथ यह नहीं कह सकता कि भगवद् गीता की शिक्षा क्या है ? लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि भगवद् गीता चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त का समर्थन करती है । वास्तविकता को मद्दे नजर रखते हुए ऐसा लगता है कि इसके लिखे जाने का यही प्रमुख कारण होगा । और भगवद् गीता इसका समर्थन कैसे करती है ? उसमें कृष्ण ने कहा है कि ईश्वर होने के नाते उसने चातुर्वर्ण्य का निर्माण *गुण-कर्म* के अनुसार किया है । इसका अर्थ यह है कि उसने व्यक्ति का दर्जा और पेशा (कार्य) उसके प्राकृतिक गुणों के अनुसार नियुक्त किये हैं । इसमें दो बातें बिल्कुल स्पष्ट हैं । एक यह कि यह सिद्धान्त नया है । पुराना सिद्धान्त विभिन्न था पुराने सिद्धान्त के अनुसार चातुर्वर्ण्य का सिद्धान्त वेदों पर आधारित था । चूंकि वेद अस्खलनशील याने अपतनशील थे, इसलिऐ उन पर आधारित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था भी वैसे ही अपतनशी थी । वेदोंके अस्खलनशील होने के इस सिद्धान्त को बुद्ध के हमलों ने तोड देने के कारण चातुर्वर्ण्य की पुरानी नींव टूट चुकी थी । यह बहुत स्वाभाविक बात है कि हिंदु धर्म, जो चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त को त्यागना नहीं चाहता था, क्योंकि वह उसे अपनी आत्मा मानता था, अपने सिद्धान्त को

न्यायसंगत बनाने हेतु किसी नये और अधिक प्रभावशाली आधार की तलाश करें जैसा कि भगवद् गीता सुझाती है। लेकिन भगवद् गीता में चातुर्वर्ण्य के न्यायसंगत होने के लिए कृष्ण ने दिया हुआ यह नया तर्क कहां तक ठीक है ? लगभग सभी हिंदुओं को यह तर्क बिल्कुल न्यायसंगत नजर आता है। इसीलिए वे उसे खण्डन करने योग्य नहीं समझते। इतना ही नहीं, तो बहुत से गैर हिंदुओं को भी वह बात जँचती है और लुभाती है। यदि चातुर्वर्ण्य केवल वेदों पर टिका होता, तो मुझे विश्वास है कि वह कब का मिट चुका होता। स्पष्ट है कि गीता के इस झुठे और शरारतपूर्ण सिद्धान्त ने चातुर्वर्ण्य को - जो कि जाति-व्यवस्था की असली जड़ है - हमेशा जिंदा रहने का मौका दिया है। गीता के इस नये सिद्धन्त की मूल कल्पना सांख्य दर्शन से ली गयी है। उसमें कोई असलीयत नहीं है। चातुर्वर्ण्य को न्याय ठहराने में उसका इस्तेमाल करने कें ही कृष्ण का असली कौशल छिपा हुआ है। लेकिन ऐसा करने में कृष्ण कई भ्रांतियों के शिकार हुए हैं। सांख्य दर्शन के रचयिता कपिलमुनि का मत था कि ईश्वर नहीं है। ईश्वर का होना केवल इसीलिए जरुरी माना गया कि पदार्थ को मृत समझा जाता है। लेकिन पदार्थ मृत नहीं है। वह गतिशील है। पदार्थ तीन गुणों से युक्त है : रजस, तमस और सत्त्व। इन तीन गुणों के समानुपातित रहने पर प्रकृति मृतवत् लगती है। इनमें से किसी एक गुण का शेष गुणों से प्रबल हो जाने पर प्रकृति गतिशील बनती है। सांख्य दर्शन का सार तथा आशय बस्स इतना ही है। इस सिद्धान्त के साथ कोई वाद-विवाद नहीं हो सकता। शायद यह दुरुस्त भी है। इस लिए यह माना जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति का एक अंग होने के कारण इन तीन गुणों से युक्त होता है। इतना ही नहीं, बल्कि यह भी माना जा सकता है कि इन तीन गुणों में से प्रत्येक गुण शेष गुणों पर अधिकार जमाने के लिए मुकाबला करता

है । लेकिन यह कैसे माना जा सकता है कि किसी व्यक्ति विशेष में एक विशेष गुण, किसी समय - मानों जन्म के समय - शेष दो गुणों से प्रबल हो और वह व्यक्ति की मृत्यु तक सदा ही प्रबल रहे ? ऐसा मानने के लिए न सांख्य दर्शन में कोई आधार है और न व्यावहारिक अनुभव में। दुर्भाग्य से कृष्ण ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तब तक न हिटलर पैदा हुआ था और न मुसोलिनी जन्मा था । वरना कृष्ण के लिए इस बात का स्पष्टीकरण करने की बड़ी मुसिबत पैदा होती थी कि एक विज्ञापन के फलक रंगानेवाला और दूसरा ईंटें रचानेवाला साधारण कारीगर संसार पर अमल चलानेवाले तानाशाह जैसे सामर्थ्य को कैसे प्राप्त कर पाएँ ? मुद्दे की बात यह है कि हर व्यक्ति की प्रकृति में लगातार परिवर्तन होता रहता है क्योंकि गुणों के आपसी सम्बंध भी लगातार बदलते रहते हैं । यदि हस तरह गुणों के आपसी प्रभावों में लगातार परिवर्तन होता हो तो उनके अनुसार मनुष्यों का चिरस्थाई तथा टिकाऊ वर्गीकरण नहीं किया जा सकता और न ही उनके व्यवसायों और धंदों का वैसे ही चिरस्थाई बंटवारा । इस तरह भगवद् गीता का समूचा सिद्धान्त ही टूटकर धाराशयी हो जाता है । लेकिन जैसा कि मैंने कहा है कि हिंदु इसकी तर्कसंगती तथा 'लुभावनी' सूरत के चक्कर में फंसकर उसके गुलाम बन गए हैं । परिणामस्वरूप हिंदु चातुर्वर्ण्य को उसके सामाजिक विषमता के सिद्धान्त के साथ अपना समर्थन देते रहे हैं । हिंदु धर्म की बहुत सारी बुराईयों में से ये दो हैं । बौद्ध धम्म इनसे मुक्त है ।

भाग ३

ऐसे लोग, जो विश्वास रखते हैं कि केवल बुद्ध के दर्शन का स्वीकार ही हिंदुओं को बचा सकता है, स्वयं बहुत भारी निराशा के

शिकार हुएँ दिखाई देते हैं, क्योंकि उन्हें भारत में बुद्ध धम्म की वापसी तथा उसके पुनरुज्जीवन के कोई चिन्ह दिखाई नहीं देते । मैं इस निराशावाद में शामिल नहीं हूँ ।

आज के हिंदु अपने धर्म के प्रति जिस प्रकार की भावना रखते हैं उससे वे दो वर्गों में बँट जाते हैं । एक वर्ग वह है जो मानता है कि हिंदू धर्म सहित सभी धर्म सच्चे हैं । और उनके इस नारे में अन्य धर्मों के नेता भी शामिल दिखाई देते हैं । सभी धर्म सच्चे हैं इससे अधिक झूठा सिद्धान्त नहीं हो सकता जिन हिंदूओं ने इसको उठाया है, वे अन्य धर्मों के अनुयायियों की सहायता करते हैं । हिंदुओं का दूसरा एक वर्ग है, जो जान चुका है कि उनके धर्म में कुछ कमी जरूर हैं । उनका दृष्टिकोन समझने लायक है । धर्म आदमी के सामाजिक उत्तराधिकार का एक अंग होता है । आदमी का जीवन उसकी शान और गौरव उससे जुड़े रहते हैं । इसी लिए अपने धर्म का त्याग करना किसी के लिए आसान नहीं होता । देशभक्ति भी बीच में आ जाती है । दुरुस्त या गलत 'मेरा देश' है । दुरुस्त या गलत 'मेरा धर्म' है । ऐसी भावना होती है । हिंदु अपने धर्म का त्याग करने के बजाय किसी तरह बच निकलने का उपाय खोजते हैं । कुछ यह सोचकर खुद का समाधान कर लेते हैं कि सभी धर्म गलत हैं, तो फिर धर्म के बारे में सोचे ही क्यों । 'देशभक्ति' का इसी प्रकार का भाव उन्हें खुले आम बौद्ध धम्म का स्वीकार करने से रोकता है । इस प्रकार के व्यवहार का एक ही परिणाम निकल सकता है । हिंदु धर्म का पतन होगा और एक जीवन नियामक शक्ति के रूप में वह समाप्त हो जाएगा । एक शून्यवत् स्थिति पैदा होगी जिसके प्रभाव से हिंदु समाज तुकड़े-तुकड़े हो जाएगा । तब हिंदुओं को विवश होकर अधिक सूझबूझ दिखानी पड़ेगी । जब वे सूझ-बूझ से काम लेने की

सोचेंगे, तब सिवाय बुद्ध धम्म के और किसी ओर नहीं जा सकेंगे ।

आशा की केवल यही एकमात्र किरण नहीं है । कई अन्य दिशाओं से भी उम्मीद झलकती है ।

एक प्रश्न है जिसका उत्तर प्रत्येक धर्म को जरूर देना चाहिए । शोषितों और पैरों तले कुचलों के लिए वह किस तरह की मानसिक और नैतिक राहत पहुँचाता है ? यदि वह ऐसा नहीं कर सकता हो तो उसका अन्त ही होगा । क्या हिंदु धर्म पिछड़े वर्गों और अछूत जन-जातियों के करोडों लोगों को कोई मानसिक और नैतिक राहत पहुँचाता है ? निश्चित नहीं । क्या हिंदु इन पिछड़े वर्गों और अछूत जन-जातियों से यह आशा रख सकते हैं कि बगैर किसी मानसिक और नैतिक राहत की उम्मीद किए वे उस धर्म को चिपके रहेंगे ? इस तरह की आशा रखना सर्वथा व्यर्थ होगा । हिंदु धर्म ज्वालामुखी पर सवार हुआ है । आज वह ज्वालामुखी बुझा हुआ नज़र आता है । लेकिन वह बुझा हुआ नहीं है । एक बार यह करोड़ों का शक्तिशाली समूह अपने पतन के बारे में सचेत हो जाएगा और यह समझ जाएगा कि अधिकतर हिंदु धर्म के सामाजिक दर्शन के कारण ही ऐसा हुआ है, तब यह ज्वालामुखी फिर से फट पड़ेगा । रोमन साम्राज्य में फैले मूर्तिपूजन को ईसाई धर्म द्वारा बाहर फेंक दिए जाने की बात यहाँ याद आती है । जैसे ही लोगों को यह एहसास हुआ कि मूर्तिपूजन से उन्हें किसी तरह की मानसिक और नैतिक राहत मिलनेवाली नहीं है, तो उन्होंने उसका त्याग किया और ईसाई धर्म को अपनाया । जो रोम में हुआ वही भारत में जरूर होगा । हिंदु लोगों को समझ आनेपर वे निश्चय ही बौद्ध धम्म की ओर ही मुड़ेंगे।

भाग ४

हिंदु धर्म और बौद्ध धर्म के बिच तुलना के तौर पर ये रहीं कुछ बातें । हिंदु धर्म के अलावा अन्य धर्मों की तुलना में बौद्ध धम्म का क्या स्थान है ? इन गैर-हिंदु धर्मों को एकेक लेकर उनकी बौद्ध धम्म के साथ विस्तारपूर्वक तुलना करना यहाँ असंभव है । मैं तो केवल इतना ही कर सकता हूँ कि मेरे निष्कर्षों को संक्षिप्त रूप में पेश कर दूँ । मेरी यह मान्यता है कि :

१. समाज को अपनी एकता को बनाए रखने के लिए या तो कानून का बंधन स्वीकारना पड़ेगा या फिर नैतिकता का । दोनों के अभाव में समाज निश्चय ही टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा । सभी प्रकार के समाज में कानून की भूमिका अत्यल्प होती है । उसका उद्देश होता है (कानून तोड़नेवाले) अल्पसंख्यकों को सामाजिक अनुशासन की सीमा में रखना। बहुसंख्यकों को मात्र अपना सामाजिक जीवन बिताने के लिए नैतिकता के प्रामाण्य और अधिकार पर छोड़ दिया जाता है, नहीं छोडना ही पडता है । इसलिए धर्म को नैतिकता के अर्थ में प्रत्येक समाज के अनुशासन का तत्त्व बने रहना चाहिऐ।

२. धर्म की उपर्युक्त परिभाषा विज्ञान के अनुकूल होनी चाहिए । यदि धर्म विज्ञान की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है तो वह अपने महत्त्व को खो कर हँसी और मजाक का विषय बन सकता है और जीवनानुशासन के तत्व-रूप में न केवल वह अपनी शक्ति खो बैठता है, बल्कि समय के साथ विच्छिन्न होकर समाज से लुप्त भी हो सकता है । दूसरे शब्दों में, धर्म को अगर वास्तव में कार्यशील होना है, तो उसे तर्क और विवेक पर आधारित होना

चाहिए । इसका ही दूसरा नाम विज्ञान है ।

३. सामाजिक नैतिकता की संहिता के रूप में ठहरने के लिए धर्म को चाहिए कि वह समता, स्वतंत्रता और बंधुता के बुनियादी तत्वों को मान्य करें। समाज जीवन के इन तीन तत्वों का स्वीकार किए बगैर कोई भी धर्म जिंदा नहीं रह सकता ।

४. धर्म ने निर्धनता को पवित्रता नहीं बक्शनी चाहिए अथवा उसका उदात्तीकरण नहीं करना चाहिए । धनवानों के लिए निर्धन बनना चाहे संतोषदायी हो भी। परंतु निर्धनता कभी संतोषदायी नहीं होती। निर्धनता को संतोषकारी घोषित करना धर्म का विपर्यास है, बुराई और अपराध को बढ़ावा देना है तथा इस संसार को प्रत्यक्षात नर्क में ढ़ालना है ।

कौन सा धर्म इन आवश्यकताओं को पूरा करता है ? इस प्रश्न का विचार करते वक्त इस बात को याद रखना चाहिए कि सन्त-महात्माओं के निर्माण के दिन अब बित चुके हैं और संसार में कोई नया धर्म पैदा होनेवाला नहीं है । संसार को प्रचलित धर्मों में से ही किसी एक को चुनना होगा । इसलिए इस प्रश्न का विचार प्रचलित धर्मों तक ही सीमित रखना चाहिए ।

हो सकता है कि प्रचलित धर्मों में से कोई एक धर्म उपरोक्त मापदण्ड़ों में किसी एक कसौटी पर खरा उतरता हो या कोई दो पर । परंतु प्रश्न यह है कि क्या कोई ऐसा धर्म है जो इन तमाम मापदण्ड़ों की कसौटी पर खरा उतरता है ? जहाँ तक मेरी जानकारी है इन तमाम माप-दण्ड़ों की कसौटी पर खरा उतरनेवाला केवल एक ही धर्म है, और वह है बौद्ध धम्म । दुसरे शब्दों में केवल बौद्ध धम्म ही ऐसा धर्म है जिसे

नया जगत् अपना सकता है। यदि नये जगत् को - और यह ध्यान रहे कि यह नया जगत् पुराने जगत् से सर्वथा भिन्न है - किसी धर्म को अपनाना ही हो-और नये जगत् को पुराने जगत की अपेक्षा धर्म की अत्यधिक जरूरत है - तो वह केवल बुद्ध का धम्म ही हो सकता है ।

ये तमाम बातें शायद आश्चर्यजनक प्रतीत होतीं हो । यह इसलिए कि बुद्ध के सम्बद्ध में लिखनेवालों में से अधिकांश लोगों ने केवल इसी कल्पना का प्रचार किया है कि बुद्ध ने सिर्फ एक ही शिक्षा दी है; और वह है अहिंसा की । यह बहुत बड़ी गलती है । यह सच है कि बुद्ध ने अहिंसा की शिक्षा दी है । मैं उसके महत्त्व को कम नहीं करना चाहता हूँ। क्योंकि वह एक महान सिद्धान्त है । उस पर अमल किए बगैर संसार को बचाया नहीं जा सकता । मैं जिस बात पर बल देना चाहता हूँ वह यह कि अहिंसा के अतिरिक्त बुद्ध ने और बहुत-सी बातों की शिक्षा दी है। अपने धर्म के अंग के तौर पर उन्होंने सामाजिक, बौद्धिक, आर्थिक और राजनैतिक स्वतंत्रता की शिक्षा दी है । उन्होंने समानता की शिक्षा दी, न केवल पुरुष और पुरुष के बीच समानता की बल्कि पुरुष और स्त्री के बीच समानता की भी । बुद्ध की तुलना में अन्य कोई ऐसे धर्म संस्थापक को खोजना कठिन होगा कि जिसकी शिक्षा लोगों के सामाजिक जीवन के इतने सारे पहलुओं को स्पर्श करती हो और जिसके सिद्धान्त इतने आधुनिक हों और जिसका मुख्य उद्देश्य इन्सान को इसी धरती पर इसी जीवन में विमुक्ति दिलाना हो, न कि मृत्यु के बाद स्वर्ग का वादा करना ।

भाग ५

बौद्ध धम्म के प्रसार का यह आदर्श प्रत्यक्षत: कैसे लाया जाए ? इसके लिए तीन कदम उठाना ज़रुरी दिखाई देता है ।

प्रथम : बुद्ध धम्म की (बाईबल जैसी) एक धार्मिक पुस्तक तैयार करना ।

दूसरा : भिक्षु संघ के संगठन, उसके ध्येय और उद्देश्यों में परिवर्तन करना ।

तीसरा : एक विश्व बौद्ध मिशन स्थापित करना ।

बौद्ध धम्म के लिए बाईबल जैसे एक किताब का निर्माण करना यह सर्व प्रथम आवश्यकता है । बौद्ध वाङ्गमय अति विशाल है । जो व्यक्ति बुद्ध धम्म का सार जानना चाहता है उससे इस वाङ्गमय समुंदर को पार करने की आशा रखना असंभव है । बुद्ध धम्म की तुलना में अन्य धर्मों में अधिक लाभ पहुँचानेवाली बात यह है कि उनकी अपनी ऐसी एक ही धर्म-पुस्तक है कि कोई भी आदमी उसे सहजता से अपने साथ रख सकता है और जी चाहे तब पढ़ सकता है । यह बहुत ही सुविधाजनक बात होती है । ऐसी सुविधाजनक धर्म-पुस्तक के अभाव में बुद्ध धम्म की हानि होती है । एक धर्म-ग्रंथ से जो आशा की जाती है वह भूमिका निभाने में भारतीय धम्मपद असफल रहा है । प्रत्येक महान धर्म का निर्माण श्रद्धा की आधारशीला पर किया गया है । किंतु श्रद्धा को यदि सांप्रदायिकता और अमूर्त तत्वों के रूप में पेश किया तो वह पचता नहीं । श्रद्धा के लिए जिससे कल्पनाशक्ति जुड़ जाए ऐसी कोई कल्पित कथा, या वीरगाथा अथवा शिक्षा की, जिसे आधुनिक पत्रकारी में कहानी कहते हैं, जरुरत होती है । धम्मपद इस तरह किसी कहानी में गुँथा हुआ नहीं है । वह अमूर्त तत्वों के सहारे श्रद्धा को बढ़ाना चाहता है।

बौद्धों के इस प्रस्थावित धर्म-ग्रंथ में ये कुछ होना चाहिए :

१) बुद्ध का संक्षिप्त चरित्र, २) चिनी धर्मपद, ३) बुद्ध के कुछ महत्वपूर्ण उपदेश, और ४) जन्म, धर्म-दिक्षा, विवाह और मृत्यु सम्बंधी

बौद्ध संस्कार-विधि । इस प्रकार की धर्म-पुस्तक तैयार करते वक्त उसकी भाषा की ओर कदापि दुर्लक्ष न किया जाय । उसकी रचना में भाषा का प्रयोग इस प्रकार होना चाहिए कि उससे वह भाषा जीती-जागती लगें । वह पुस्तक किसी कथा-कथन या सिद्धान्तों का निरूपण पढ़ने जैसी होने की बजाए गुनगुनाए जानेवाली होनी चाहिए । भाषा की रचना-शैली सहजगम्य, भावविभोर तथा मोहित करनेवाली होती चाहिए।

एक हिंदु संन्यासी और बौद्ध भिक्षु में जमीन अस्मान का अंतर होता है । हिंदु संन्यासी को संसार से कोई वास्ता नहीं होता । संसार की दृष्टी में वह मर जाता है । एक भिक्षु का हर एक दृष्टि से संसार के साथ नाता होता है । वस्तुस्थिति ऐसी होने से एक प्रश्न उठता है । किस उद्देश्य को सामने रखकर बुद्ध ने भिक्षु संघ का निर्माण करने की कल्पना की ? भिक्षुओं का एक अलग समाज स्थापित करने की क्या आवश्यकता थी ? इसका एक उद्देश्य यह था कि बौद्ध सिद्धान्तों में संग्रहित आदर्शों के अनुसार जीवन व्यतीत करनेवाले लोगों का एक ऐसा समाज बनाया जाए जो उपासकों के लिए एक नमुने के रूप में काम आए । बुद्ध को इस बात का पता था कि जनसामान्य को बुद्ध के आदर्शों का साक्षात्कार करना संभव नहीं था । परंतु इसी के साथ वे यह भी चाहते थे कि सामान्य जन इस आदर्शोंको जाने और यह भी कि उनके समक्ष इन आदर्शों पर अमल करने के लिए वचनबद्ध समाज का उदाहरण रखा जाए । इसीलिए उन्होंने भिक्षु संघ का निर्माण किया और उसे विनय के नियमों से बांध दिया । परंतु इसी के साथ उनके मन में अन्य भी उद्देश्य थे जिनके कारण उन्होंने संघ की स्थापना करने का विचार किया । उनमें से एक यह था कि उपासकों के लिए सही पक्षपातरहित मार्गदर्शन करनेवालों का एक संगठन किया जाए । इसी

वजह से उन्होंने भिक्षुओं को संपत्ति का संग्रह करने से मना किया। स्वतंत्र चिंतन और स्वतंत्र आचरण करने में संपत्ति का स्वामित्व सब से बडी बाधाओं में से एक है। भिक्षु संघ स्थापित करने का बुद्ध का दूसरा उद्देश्य यह था कि एक ऐसा समाज स्थापित किया जाए जो जनता की सेवा करने में बिल्कुल स्वतंत्र हो। इसी लिए वे चाहते थे कि भिक्षु विवाह न करें।

क्या आज का भिक्षु संघ इन आदर्शों पर चलता है ? इसका जबाब जोरदार न में है। वह न तो जनता का मार्गदर्शन करता है और न ही उसकी सेवा।

इसलिए भिक्षु संघ अपनी मौजूदा हालत में बुद्ध धम्म के प्रसारकार्य के बिल्कुल योग्य नहीं है। पहली बात तो यह है कि भिक्षुओं की संख्या भी अत्यधिक है। उनमें से साधु-संन्यासियों जैसी ध्यान-धारना में व्यस्त रहनेवालों की या तो फिजूल वक्त बरबाद करनेवालों की संख्या भी बहुत भारी है। उनमें न तो विद्वत्ता है, न ही सेवा भाव। जब किसी को पीडित मानवता की सेवा करने का ख्याल आता है, तो हर कोई रामकृष्ण मिशन को ही याद करता है। बौद्ध संघ को कोई याद नहीं करता। आखिर सेवा करना किस का श्रद्धामय कर्तव्य होना चाहिए ? संघ का या रामकृष्ण मिशन का ? इसके बारे में किसी को भी कोई संदेह नहीं हो सकता। फिर भी संघ बेकार लोगों की एक सेना है। हम संख्या में कम भिक्षु चाहते हैं, और चाहते हैं कि वे उँची कोटी के विद्वान हो। भिक्षु संघ को चाहिए कि वह ईसाई पादरियों से और खास कर जेसुईट पादरियों से कुछ बातें सिखें। एशिया में ईसाई धर्म का फेलाव विद्या और चिकित्सा द्वारा की गई सेवाओं से हुआ है। ईसाई धर्म के लिए यह इसलिए संभव हुआ कि ईसाई पादरी न केवल अपने धर्म के ज्ञानी होते

हैं बल्कि वे कला और विज्ञान में भी प्रवीण होते हैं। वास्तव में पुराने काल से भिक्षुओं का यही आदर्श रहा है। जैसा कि सर्वज्ञात है कि नालंदा और तक्षशिला विश्वविद्यालयों का संचालन भिक्षुओं द्वारा भिक्षुओं को नियुक्त कर के हो जाता था। स्पष्ट है कि वे जरूर विद्वान लोग होंगे और यह भली भाँति जानते होंगे कि अपने धर्म के प्रसार के लिए सामाजिक सेवा अत्यावश्यक है। आज के भिक्षूओं को अपने पुराने आदर्श की ओर लौटना चाहिए। आज की स्थिति में पाया जाने वाला संघ जनता की इस प्रकार सेवा नहीं कर सकता हैं और न ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है।

एक मिशन स्थापित किए बिना बुद्ध धम्म का फैलाव होना संभव नहीं। जिस प्रकार शिक्षा देनी पड़ती है उसी प्रकार धम्म का भी प्रचार करना जरुरी होता है। प्रचार का कार्य बिना मनुष्यों के और बिना धन से नहीं किया जा सकता। इसकी पूर्ति कौन कर सकता है ? अर्थात् वे ही देश इसकी पूर्ति कर सकते हैं, जहाँ बौद्ध धम्म एक जीवित धर्म है। वे ही देश हैं जिन को कम से कम प्रचार के आरम्भिक काल में आदमी और धन जुटाने चाहिए। क्या वे ऐसा करेंगे ? बुद्ध धम्म के फैलाव के लिए आवश्यक जोश उन में दिखाई नहीं देता है।

दूसरी ओर बुद्ध धम्म के प्रसार के लिए प्रस्तुत समय बिल्कुल अनुकूल सा दिखाई देता है। एक समय था जब धर्म आदमी के उत्तराधिकार का अंग हुआ करता था। एक समय था जब कोई लड़का या लड़की अपने माता-पिता की पैतृक-संपत्ति के साथ साथ उनके धर्म को भी उत्तराधिकार में पाते थे। तब धर्म के गुण और अवगुणों की परख करने का सवाल ही नहीं उठता था। कभी कभी कोई उत्तराधिकारी यह प्रश्न तो उठाता था कि क्या वह पैतृकसम्पत्ति प्राप्त करने योग्य भी है ?

परंतु ऐसा कोई उत्तराधिकारी नहीं था जो यह प्रश्न करता कि क्या उसके मातापिता का धर्म अपनाने योग्य है ? लगता है कि अब समय बदल चुका है। संसार भर में अब बहुत से लोगों ने उत्तराधिकार में पाए जाने वाले अपने धर्म के बारे में प्रश्न करने का अद्भुत साहस दिखाया है। बहुत से लोग, उन पर पड़े वैज्ञानिक अनवेन्शन पद्धति के प्रभाव के कारण, इस नतिजे पर पहुँचे हैं कि धर्म एक गलती है और उसका त्याग करना जरुरी है। दूसरे ऐसे लोग हैं जो मार्क्स की साम्यवादी शिक्षा के कारण इस नतिजे पर पहुँचे हैं कि धर्म एक अफीम है, जो निर्धनों को धनवानों के प्रभुत्व के सामने सर झुकाने पर मजबूर करता है और इसलिए उसको फैंक देना चाहिए। कारण चाहे कुछ भी हो, यह सत्य है कि धर्म के बारे में लोगों के मन में जाँच-पडताल करने की भावना पैदा हो चुकी है। और सोचने का साहस करने वालों के मन में तो सब से पहले यह भी प्रश्न उठते हैं कि क्या कोई धर्म अपनाने योग्य है भी ? और यदि है तो कौनसा ? अब समय आया है। अब जरुरत है दृढ संकल्प की। यदि वे देश, जो बौद्ध हैं, बुद्ध धम्म के प्रसार का संकल्प बढ़ाते हैं तो यह कार्य कठिन नहीं होगा। उन्होंनेइस बात को जरूर महसूस करना चाहिए कि केवल एक अच्छा बौद्ध होना ही किसी का कर्तव्य नहीं है। बल्कि उसका कर्तव्य है कि वह बुद्ध धर्म का प्रसार भी करें। उन्हें यह मानना ही होगा कि बुद्ध धम्म का प्रसार करना ही वास्तविक मानवता की सेवा करना है।

★ ★

डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर की वाणी

THE SPEECHES OF DR. AMBEDKAR

अछुत : कौन और कैसे?

यह पुस्तक एक प्रकार से मेरी दूसरी पुस्तक — "शूद्र कौन थे ? और वे कैसे हिंदी आर्य-समाज का चौथा वर्ण बने?" (यानी 'शूद्रों की खोज ') का शेषांश है. शूद्रों के अतिरिक्त हिंदू-सभ्यता ने तीन और सामाजीक वर्गों को जन्म दिया है, जिनकी ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए, उतना नहीं दिया गया. वे तीन सामाजिक वर्ग है.-

१. जरायम - पेशा जातियाँ, जिनकी जन -संख्या लगभग दो करोड़ है;

२.आदि-वासी जातियाँ, जिनकी जन संख्या लगभग डेढ़ करोड़ है;

३.अधूत जातियाँ, जिनकी ज़न - जन संख्या लगभग पाँच करोड़ है.

इन वर्गों का अस्तित्व एक जुगुप्सा का विषय है. यदि हिन्दू - सभ्यता को इन वर्गों की जनक के रूप में देखा जाय, तो वह 'सभ्यता' ही नहीं कहला सकती. वह तो मानवता को दबाये तथा गुलाम बनाये रखने के लिये 'शैतानियत ' होना चाहिये. उस सभ्यता को हम और क्या नाम दें, जिसने ऐसे लोगों की एक बड़ी संख्या को जन्म दिया हो, जिन्हें यह शिक्षा दी जाती है कि चोरी-चकारी करके जीवीका चलाना जीवकोपार्जन का एक मान्य 'स्वधर्म' है दूसरी बड़ी संख्या, सभ्यता के बीचों -बीच अपनी आरंभिक बर्बर अवस्था बनाये रखने के लिये स्वतन्त्र धोड़ दी गई है,और एक तीसरी बड़ी संख्या है, जिसे सामाजिक व्यवहार से परे की चीज समझा गया है, और जिसके स्पर्श- मात्र से आदमी 'अपवित्र हो जाता है.

यदि किसी भी दूसरे देश में ऐसे वर्ग विद्यमान होते, तो लोग अपने दिलों को टटोलते और उसके मूल का पता लगाने का प्रयत्न करते. किन्तु हिन्दू को इन दो में से एक की भी नहीं सूझी. इसका कारण सरल है. हिन्दू को यह लगता ही नही कि इन वर्गों का अस्तित्व उसके लिए कुछ क्षमायाचना करने अथवा लज्जा का कारण है. वह इस विषय में न प्रायश्चित करने की अपनी जिम्मेदारी समझता है और न इनकी उत्पती तथा विकास के सम्बन्ध में खोज करने की. दूसरी ओर प्रत्येक हिन्दू को यह विश्वास दिलाया जाता है कि उसकी सभ्यता न केवल सबसे अधिक प्राचिन है किंतू अनेक दृष्टियोंसे यह एकदम अनोखी भी है . हिन्दू -सभ्यता बहुत प्राचीन है, यह बात समझ में आती है और मानी भी जा सकती है, लेकीन यह बात समझ में नही आती कि हिन्दू अपनी सभ्यता को अनोखी किस आधार पर कहता है? हिन्दूओं को कदाचित यह अच्छा न लगे. किन्तू जहाँ तक अहिन्दुओं का सम्बन्ध है, इस प्रकार की मान्यता का एक ही आधार हो सकता है. यह आधार इन वर्गों का अस्तित्व है, जिनकी जिम्मेदारी हिन्दू- सभ्यता के सिर है. किसी हिन्दू को इस बात के जरूरत नहीं कि हिन्दू सभ्यता एक अनोखी चीज है, क्योंकि कोई इससे इनकार नहीं करता. काश ! हिन्दू इस बात को समझता कि यह अभिमान करने की नहीं, अपितु लज्जित होने की बात है.

हिन्दू -सभ्यता की बुद्धिमता, श्रेष्ठता और पवित्रता में लोगों का जो झूठा विश्वास है, उसका मूल कारण हिन्दू - विद्वानों का विचित्र सामाजिक मानस- शास्त्र है. आज तमाम पांडित्य ब्राम्हणो में सीमीत है. किन्तू दुर्भाग्य से अभी तक एक भी ब्राम्हण पंडित ने आगे बढ़क़र वाल्टेअर - जैसा

काम नहीं किया. वाल्टेअर में मानसिक ईमानदारी थी,जिसके कारण, वह जिस कैथोलिक चर्च में पला था, उसी के सिद्धांतों के विरूद्ध उठ खड़ा हुआ. भविष्य में भी किसी के वाल्टेयर बनने की सम्भावना नहीं. ब्राम्हणों के पांडित्य की यह एक कड़ी टीका है कि उन्हाने एक भी वाल्टेयर पैदा नहीं किया. इसमे कोई आश्चर्य नहीं होगा यदि यह बात याद रहे कि ब्राम्हण- पंडित विद्धानभर है. मनीषी और विद्वान मे आकाश- पाताल का अन्तर है. पहला वर्ग चैतन्य होता है, उसे अपने वर्ग के स्वार्थो की चिन्ता रहती है. दूसरा एक मनस्वी प्राणी होता है, जो अपने वर्ग के स्वार्थों की परवाह न कर स्वतंत्रता पूर्वक आचरण कर सकता है. ब्राम्हणों ने तो कोई वाल्टेयर पैदा नहीं किया, उसका कारण यही है किं ब्राम्हणों ने तो कोई वाल्टेयर पैदा नहीं किया, उसका कारण यही है कि ब्राम्हम केवल विद्धान हुए है.

ब्राम्हणों ने कोई भी वाल्टेयर क्यों पैदा नहीं किया? इस प्रश्न का उत्तर एक दूसरे प्रश्न द्वारा भी दिया जा सकता है तुर्की के सुल्तान ने इस्लामी संसार के मजहब को क्यों नष्ट नहीं किया? किसी भी पोप ने कैथोलिक धर्म की निन्दा क्यों नही की? ब्रिटिश पार्लियामेंट ने तमाम नीली आंखो वाले बच्चों को मार डालने का कानून क्यों पास नहीं किया? सुल्तान, पोप अथवा ब्रिटिश पार्लियामेंट उसी एक कारण से यह सब बाते. नही कर सकी जिस कारण से ब्राम्हण कोई वाल्टेयर पैदा नहीं कर सके. यह बात मान लेनी चाहिए कि किसी भी आदमी के आचरण को ऊसका अथवा उसके वर्ग का स्वार्थ अन्दरूनी तौर पर बाँध देता है और उसकी बुद्धि भी तदनुसार ही कार्य करती है ब्राम्हण को आज हिन्दू- समाज में जो शक्ति और पद मिला हुआ है, वह सम्पूर्ण रूप से इस हिन्दू- सभ्यता के ही कारण है, जो उसे मानव से कुछ बढ़ क़र स्वीकार करती है और निचले वर्ग के लोगों पर नाना प्रकार की पाबन्दियाँ लगती है, जिससे वे कभी विद्रोह करके ब्राम्हण की श्रेष्ठता को अस्वीकार न कर बैठें. ऐसा स्वाभाविक ही है. प्रत्येक ब्राम्हण का - चाहे वह रूढिवादी विचार का हो, चाहे प्रगतिशील; चाहे वह पूरोहित हो, चाहे गृहस्थ हो, पंडित हो, अपन्डित हो,-स्वार्थ इसी बात में है, कि ब्राम्हण का स्थान ऊंचा बना रहे. ब्राम्हण वाल्टेयर किस तरह हो सकते थे?ब्राम्हणो में यदि कोई वाल्टेयर पैदा हो जाय, तो वह उस सभ्यता के लिए एक निश्चित खतरा सिद्ध होगा, जिसकी रचना ही ब्राम्हणों की प्रधानता बनाये रखने के लिए हुई है. बात यह है कि ब्राम्हण की प्रतिभा को इस बात की चिन्ता बनी रहती है कि उसका स्वार्थ सुरक्षित रहे. उस पर यह एक भीतरी प्रतिबन्ध लगा हुआ है , जिसके कारण ऊसकी प्रतिभा उस सिमा तक नहीं खिलती , जिस सिमा तक ऊसकी ईमानदारी और सचाई के कारण उसको खिलाना चाहिए. उसे यह डर बना रहता है कि कही. इससे उसके वर्ग को और इसलिए अपने स्वार्थो को हानी न पहुँच जाय.

लेकिन जो बात ब्राम्हणों को चिढ़ाती है, वह है ब्राम्हणी- साहित्य की पोल खोलने के किसी भी प्रयत्न के प्रति ब्राम्हणी-पंडित की असहनशिलता. वह स्वयं तो. जहां आवश्यक भी हो, वहां भी मूर्ति- भंजक का काम नहीं करेगा. वह ऐसे ब्राम्हणों को भी, जिनमे यह कार्य करने की योंग्यता है, नहीं करने देगा. यदि कोई ब्राह्मण ऐसा प्रयत्न करे, तो सब ब्राम्हण पंडित साजिश करके चुप्पी साध लेंगे, उसके कथन की ओर ध्यान ही नहीं देंगे. किसी मामूली बात को लेकर उसका एकदम विरोंध करेंगे अथवा उसकी कृति को एकदम निकम्मा ठहरा देंगे. ब्राम्हणी साहित्य

की पोल खोलने के काम में लगे हूए लेखक के नाते मै इस प्रकार के नीचतापूर्ण व्यवहार का शिकार हो चुका हूँ.

ब्राह्मण पंडितों के रूदन के बावजूद, जिस कार्य की मैंने जिम्मेदारी ली है, वह मुझे करते रहना चाहिए . इन वर्गों की उत्पती कैसे हुई, यह एक ऐसा विषय है, जिसमें खोज करने की आवश्यकता है. इस पुस्तक में इन अभागे वर्गों में से एक पर विचार किया गया है. तीनों में 'अछूतों 'की ही

प्रत्येक हिन्दू को यह विश्वास दिलाया जाता है कि उसकी सभ्यता न केवल सबसे अधिक प्राचीन है किंतु अनेक दृष्टियों से यह एकदम अनोखी भी है. हिन्दू इन बातों को दोहराने में कभी नहीं थकता. हिन्दू-सभ्यता बहुत प्राचीन है, यह बात समझ में आती है और मानी भी जा सकती है, लेकिन यह समझ मे नहीं आती कि हिन्दू अपनी सभ्यता को अनोखी किस आधार पर कहता है?

संख्या सबसे अधिक है और उन्ही का अस्तित्व भी सबसे अधिक अस्वाभाविक है. इतना होने पर भी अबी तक उनके 'मूल' का पता लगाने का कोई प्रयत्न नहीं हुआ. हिन्दओं ने ऐसा प्रयत्न आरम्भ न किया हो, यह बात अच्छी तरह समझ में आती है. पुराने रूढिवादी हिन्दू को 'छूत-छात ' मानने में कोई दोष ही नहीं दिखाई देता. उसके लिए यह एक सामान्य और स्वाभाविक बात है. इसलिए इस सम्बन्ध में न उसे किसी प्रायश्चित की आवश्यकता है और न व्याख्या की. आधुनिक नये विचार के हिन्दू हो इसमें दोष दिखाई देता है, लेकिन उसे इसकी सार्वजनिक तौर पर चर्चा करते हुए लज्जा आती है. ऊसे इस बात का डर लगा है कि कहीं विदेशी यह न भाँप जायं कि हिन्दू -सभ्यता इस प्रकार की निन्दनीय तथा विषभरी पद्धति अथवा सामाजिक व्यवस्था है, जो कि 'अछूतपन' जैसी नृशंसता की जनक हो सकती है. लेकीन आश्चर्य की बात है, कि 'अछूतपन' ने सामाजिक संस्थाओं के योरोपियन विधार्थियों का भी ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं किया . ऐसा क्यों हुआ? यह समझ में आना कठिन है. लेकिन बात ऐसी ही है.

इसलिए यह पुस्तक एक विषय में, जिसकी हर किसी ने उपेक्षा की है, मार्ग- दर्शक प्रयत्न समझी जो सकती है. यदि मै कह सकूं, तो यह पुस्तक न कोवल मुख्य प्रश्न के हर पहलू पर विचार करती है, जिस पर विचार करना इसका उद्देश्य है, अर्थात 'अछूतापन 'की उत्पति के प्रश्न पर, अपितु यह इस सम्बन्ध के लगभग अन्य सभी प्रश्नों पर भी विचार करती है.कुछ प्रश्न तो ऐसे है जिनका बहुत ही कम लोगों को ज्ञान है, और जिन्हें ज्ञान है, बेचारे हैरान है.उनकी समझ में नहीं आता कि वे इन प्रश्नों का क्या उत्तर दें?इन प्रश्नों में से कुछ, जिनपर इस पुस्तक में विचार किया गया है, ऐसे है जैसे

१. अछूत गांव के बाहर क्यों रहते है? २. गौ-मांसाहार अछूतपन का कारण क्यों हुआ ? ३. क्या हिन्दूओं ने कभी गौ- मांस नहीं खाया? .४. अब्राह्मणों ने गौ-मांस खाना क्यों छोड़ दिया? ५) ब्राह्मण क्यों शाकाहारी आदि बन गये? इस पुस्तक में, इनमें से प्रत्येक प्रश्न का उत्तर सुझाया

गया है। सम्भव है, इस पुस्तक में जो उत्तर दिये गये है, व सभी दृष्टियों से सम्पूण न हों, किन्तु यह स्वीकर करना होगा कि यह पुस्तक पुरानी बातों पर एक नई दृष्टी से विचार करने का प्रयत्न अवश्य है।

इस पुस्तका में 'अछूतपन' की उत्पत्ति के बारे में जो विचार - सारणी दी गई है, वह सर्वथा नवीन है। उसकी मुख्य धारायें ये है —

१.'हिन्दुओं' और ' अछूतों' मे ' नस्ल ' की कोई भिन्नता नहीं है।

२. ' अछूतपन ' की उत्पत्ति से पहले अपने मूल - रूप में ' हिन्दुओं ' और अछूतों का भेद एक दल के आदमियों तथा पराये दलों के छितरे हुए आदमियों (Broken Men) का विभेद था. ये छितरे हुए अदमी ही आगे चलकर ' अछूत' कहलाये।

३. जिस प्रकार ' नस्ल ' की भिन्नता ' अछूतपन ' का आधार नहीं है, उसी प्रकार पेशों की भिन्नता भी ' अछूतपन ' का आधार नहीं है।

४. अछूतपन ' की उत्पत्ति के मूल कारण दो है -

क. ब्राह्मणों की ' छितर हुए ' बौध्दो के प्रति घृणा

ख. दुसरों के गौ-मास- भक्षण छोड़ देने पर भी छितरे हुए आदमियों का गौ- मांस खाते रहना।

५. 'अछूतपन ' के मूल का पता लगाने के प्रयत्न में हमें यह सावधानी रखनी चाहिए कि हम ' अछूत' और 'अपवित्र ' को एक न बना दें । जितने रुढ़िवादी हिन्दू - लेखक हैं, उन्होंने ' अछूत ' और ' अपवित्र' को एक कर दिया है. यह एक गलती है । 'अछूत ' और है, तथा ' अपवित्र ' और ।

६. यद्यपि एक वर्ग के तौर पर धर्म - शास्त्रो के ही समय में 'अपवित्र ' लोगों का जन्म हो गया था.

किन्तु ' अछूत ' ४००ई. के भी बहुत बाद मे असित्व में आये।

ये निष्कर्ष मेरी ऐतिहाहिक खोजों के परिणाम है. एक इतिहासज्ञ को अपने सामने जो आदर्श रखना चाहिए । उसे ' गोएके ' ने उपयुक्त शब्दों मे रखा है । उसका कथन है -

"इतिहासज्ञ का कर्तव्य है कि वह सत्य को असत्य से , निश्चित को अनिश्चित से तथा संदिग्ध को अस्वीकारणीय से पृथक करे .... हर एक खोजी को सर्वोपरि अपने आप को ऐसा समझना चाहिर, मानो वह किसी मुकदमे का निर्णय करने के लिए बैठा हो । उसे केवल इस बात का पर विचार करना है कि गवाहियों के हिसाब से मुकदमे का पूरा और स्पष्ट रुप क्या है ? तब उसे अपना निष्कर्ष निकालना है , और अपना मत (निर्णय) देना है, भले ही उससे पहले आदमी के साथ उसका निर्णय मेल खाये, चाहे न खाये."

गोएके के इस उपदेश के अनुसार आचरण करने मे कोई कठिनाई नही हो सकती, यदि तत्सम्बन्धी आवश्यक घटनायें ज्ञात हों. यह तमाम उपदेश बहुत मूल्यवान है और आवश्यक भी. किन्तु गोएके हमें यह नहीं बताता कि इतिहासज्ञ को जब उसे बीच की एक कड़ी ही न मिले ,

और जब उसे महत्वपूर्ण घटनाओं के बीचे के परस्पर के सम्बन्ध का कोई सीधा प्रमाण ही न मिले, तो इतिहासज्ञ क्या करे ? यह इसलिए कह रहा हूं कि ' अछूतपन ' क़े मूल की खोज करने तथा दूसरी ऐसी सम्बन्धित समस्याओं को हल करने के अपने प्रयत्न में मुझे कई अदृश्य हुई कड़ि/ो से पाला पड़ा है . निस्संन्देह इस मामले में मैं ही अकेला नहीं हूँ. प्राचीन भारतीय इतिहास के सभी विद्यार्थियों को उनका मुकाबला करना पड़ा है. भारतीय इतिहास की ही चर्चा करते हुए ' माउन्ट स्टूअर्ट एरिफस्टन ' ने लिखा है - " अलक्षेन्द्र के आगमन पूर्व की किसी सार्वजनिक घटना की तारीख बता सकना कठिन है, और इस्लाम की विजय से पूर्व प्राकृतिक परिवर्तन में किसी प्रकार के कार्य - कारण - सम्बन्ध को ढूँढ निकालने का प्रयत्न करना भी कठिंन है." यह एक खेद भरी स्वीकृति है, किन्तु इससे हमें कूछ सहायता नही मिलती. प्रश्न है - "इतिहास का विद्यार्थी क्या करे ? क़्या जब तक अपने काम को रोक दे ? " मैं ऐसा नही समझता. मेरी मान्यता है कि ऐसी अवस्था में उसे इस बात की छूट है कि खोई हुई कड़ियों की कमी को नई अज्ञात कड़ियों से पूरा करने की कोशिश करे. वह किसी एक सिध्दांत का प्रतिपादन करे, जिसे ठीक मानकर आगे बढ़ा जा सके और यह सुझाये कि जिन घटनाओं की ज्ञात घटनाओं से किसी तरह व्याख्या नहीं होती, उनमें कार्य - कारण का क्या संबंध रहा होगा. मुझे यह स्वीकर करना चाहिए कि काम को रोक देने के बजाय मैंने इसी पद्धति का अनुसरण किया है, और इसी तरह उस कठिनाई से पार पाने का प्रयत्न किया है, जो मेरे सामने घटनाओं की खोई हुई कड़ियों के न मिलने के कारण उपस्थित हुई.

सम्भव है, आलोचक मेरी इस 'कमी' क़ा उपयोग, मेरी सारी विचार - सारणी को रद्दी की

ब्राह्मण को आज हिन्दूं - समाज में जो शक्ति और पद मिला हुआ है, वह सम्पूर्ण रूप से इस हिन्दू - सभ्यता के ही कारण है, जो उसे मानव से कुछ बढ़ कर स्वीकर करती है और निचले वर्ग के लोगों पर नाना प्रकार की पाबन्दियाँ लगाती है, जिससे वे कभी विद्रोह करके ब्राह्मण की श्रेष्ठता को अस्वीकर न कर बैठें.

'अछूतपन ' क़े मूल का पता लगाने के प्रयत्न में हमें यह साधानी रखनी चाहिए कि हम ' अछूत' और 'अपवित्र ' को एक न बना दें.

टोकरी में डाल देने के लिए करें और कहें कि यह ऐतिहासिक खोज के सिद्धांतों के सर्वता प्रतिकूल है. यदि आलोचकों का यही मत हो, तो मै उन्हें याद दिलाना चाहता हूँ कि यदि कोई ऐसा नियम है जो ऐतिहासिक निष्कर्षो पर शासन करता है और कहता है कि किसी मत को केवल इसलिए अस्वीकर कर दो कि उसकी सीधी - साक्षी नहीं मिलती , तो वह नियम ही खराब नियम है.

१. सीधी - साक्षी बनाम अनुमान - प्रमाण, तथा २. अनुमान - प्रमाण बनाम कल्पना के विवाद में न पड़क़र आलोचक को जो काम करना चाहिए, वह यही है कि वह देखे कि क्या कोई

मत केवल अटकल पर निर्भर करता है ? कि ३. क्या वह मत सम्भव है, और क्या वह मेरे मत की अपेक्षा ज्ञात बातों से अधिक मेल खाता है?

पहली बात के बारे में मैं कह सकता हूँ कि केवल इसलिए कि इसमें कहीं - कही. ' कल्पना ' से काम लिया गया है कोई मत निराधार नहीं माना जा सकता. मेरे आलोचकों को याद रखना चाहिए कि हम एक ऐसी संस्था का विचार करने जा रहे है, जिसका मूल अतीत के गर्भ में विलीन हो चुका है, 'अछूतपन ' की उत्पत्ति की व्याख्या करने का यह प्रयत्न किन्हीं ऐसे इतिहास ग्रन्थों से, जिनमें सब बातें निश्चयात्मक भाषा में दी हुई हों, सम्भव नहीं. यह तो जहां ऐतिहासिक आदार अविद्यमान है, वहाँ इतिहास की पुनर्रचना का प्रश्न है, क्योंकि जहां वह है भी, वहांभी उसने इस समस्या पर कोई सीधा प्रकाश नहीं पड़ता. ऐसी परिस्थिति में ग्रन्थों मे डुबकी लगाकर यह पता लगाने का प्रयास करना ही पड़ेगा कि वे ग्रन्थ क्या - क्या बातें सुझाते हैं और किस किस बात को छिपाते है. बिना इस बात का पूर्ण निश्चय हुए कि जो मिला है, वह सत्य भी है या नहीं, अतीत के अवशेषों का संग्रह करना, उन्हे एक दूसरे के पास - पास रखना और उनसे उनकी उत्पत्ति की उपमा उस पुरातत्व वेत्ता के कार्य से दी जा सकती हैं, जो खण्डहरों से शहर का निर्माण करे, अथवा उस प्राणि - शास्त्र वेत्ता के कार्य से जो किसी प्राणी की बिखरी पड़ी हड्डियो और उसके दाँतो से उस प्राणी की कल्पना करता है, अथवा उस चित्रकार के कार्य से जो किसी दृश्य के निर्माण के लिए क्षितिज की रेखाओं और पहाड़ी पर के छोटे - छोटे पद - चिन्हो का अध्ययन करता है. इस दृष्टि से यह एक इतिहास - पुस्तक से भी अधिक एक कला कृति है. 'अछूतपन ' का मूल उस मृत - अतीत के गर्भ मे विलीन है, जिसकी किसी को जानकारी नही. उसे जीवित करने का प्रयत्न ऐसा ही है, जैसा इतिहास के लिए किसी ऐसे शहर का पुनरूध्दार करना जो अनन्त काल से लुप्तप्राय है, और जिसको उसके मुल - रूप में लाकर खड़ा कर देना है. ऐस कार्य मे ' कल्पना ' तथा ' अनुमान ' को अपना बड़ा हिस्सा लेना ही होगा. इसेक बिना यह कार्य नहीं हो सकता. क्योंकि यह स्वीकृत तथ्य है कि शिक्षित कल्पना के बिना कोई वैज्ञानिक खोज सफल नहीं हो सकती, और 'अनुमान' ही विज्ञान की आत्मा है. मैक्सिम गोर्की का कथन है-

"विज्ञान और साहित्य में बहुत समानता है.दोनों में ही ध्यान से देखने, तुलना करने और अध्ययन करने का विशेष महत्व है, कलाकार को भी वैज्ञानिक की ही कल्पना और अंत:दृष्टि की आवश्यकता रहती है. कल्पना और अंत:दृष्टि ही अभी तक अज्ञात घटनाओं की जंजीर की खोई हुई कड़ियों की कमी को पूरा करती रही है. वह वैज्ञानिक को इस बात की आज्ञा देती है कि वह ऐसे अनुमान लगाये और इस प्रकार के मत का प्रतिपादन करे, जो प्रकृति के रुप और उसकी प्रक्रिया के अध्ययन में लगे हुए आदमी के मन को कम या अधिक ठीक-ठीक रास्ता दिखा सके. ये साहित्य-निर्माण की चीजें है. 'पात्रों' और 'नमूनों' का निर्माण करने की कला में कल्पना, अंत:दृष्टि और अपने मन में चीजें बना सकने की योग्यता की अपेक्षा रहती हैं"

इसलिए जहाँ कड़ियाँ खोई हुई है, वहाँ उनके पुन: निर्माण करने का प्रयत्न करने के लिए मुजे क्षमा याचना करने की जरूरत नहीं है, और केवल इसी कारण मेरा मत 'दूषित' भी नही माना जा सकता. अधिकांश में मेरी सारी विचार-सरणी अथवा मत का आधार यथार्थ घटनाएँ और उनसे

जो अनुमान निकाले गये, वे ही हैं. जहाँ-जहाँ यथार्थ घटनाओं या उनसे प्राप्त अनुमानों का आधार नहीं लिया गया, वहाँ-वहाँ उसका आधार सम्भावना की पर्याप्त-मात्रा पर आश्रित परिस्थिती-जन्य गवाही है। ऐसी एक भी बात नहीं है, जो मैंने अपने कथन के समर्थन में कही हो और जिसके बारे में मैने अपने पाठको से आशा की हो कि वे बिना किसी प्रमाण के केवल 'विश्वास' के बल पर स्वीकार कर लें. मैने कम-से-कम यह दिखा दिया है कि जो कुछ मैने कहा है, उसके पक्ष में सम्भावनाओं की मात्रा बहुत है. यह कहना कि सम्भावना की बहुत मात्रा किसी निर्णय को सप्रमाण मानने का पर्याप्त आधार नहीं है, केवल बाल की खाल निकालना है.

दूसरी बात, जिस पर मै चाहता हूँ कि मेरे आलोचक ध्यान दें, यह है कि मैं ऐसा 'ओछा' नही हूँ कि अपने कथन को 'अन्तिम-सत्य' मान बैठूं. मै किसी से इसे 'अन्तिम शब्द' मानने की प्रार्थना नहीं करता. मैं आलोचकों के निजी निर्णय को प्रभावित नहीं करना चाहता.वे अपने निर्णय पर पहुँचने में स्वतंत्र है, मै उनसे जो बात निवेदन करना चाहता हूँ वह इतनी ही है कि वे यह विचार कर देखे कि क्या मेरा यह मत ऐसा नहीं है जिसे लेकर आगे बढ़ा जा सके? यदि किसी भी मत की प्रामाणिकता इस बात में है कि वह आस-पास के सभी बातों से मेल खाता हो, उनकी व्याख्या कर देता हो और उन्हे एक अर्थ देता हो - ऐसा अर्थ जो उस मत के अभाव में किया ही नहीं जा सकता,तो अवश्य उसे लेकर आगे बढ़ा जा सकता है. किंतु मैं अपने आलोचको से एक निष्पक्ष मूल्यांकन के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता.

भीमराव आंबेडकर
१ हार्डिंग एवेन्यू,नई दिल्ली
१ जनवरी, १९४८

●●●

१४ अक्तूबर १९५६ बाबासाहब डा. बी.आर.अम्बेडकर का ऐतिहासिक नागपुर सम्बोधन



हम बौद्ध क्यों बनें?

हिन्दू धर्म में कोई जान नहीं है

बौद्ध धर्मानुयाइयो!

मैं आज के अपने भाषण में इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर कि मैंने भगवान बुद्ध के चलाये हुए धर्म का पुनरुद्धार तथा प्रचार के महान् कार्यभार को अपने कंधो पर क्यों लिया है? अपने विचार प्रकट करना चाहता हूं. कई विचारशील व्यक्तियों का और मेरा अपना विचार है कि कल का धर्मान्तर समारोह आज होना चाहिए था और आज का यह धर्म परिवर्तन अभिभाषण धर्मान्तर समारोह से पूर्व कल होना चाहिए था. किन्तु जो होना था सो हुआ. अब आज इस प्रश्न पर विचार करना कोई महत्व नहीं रखता है.

बहुत लोगो ने मुझ से यह प्रश्न किया है कि इस महान समारम्भ के लिए नागपुर ही क्यों चुना है अन्य कोई स्थान क्यों नहीं चुना? कुछ का कहना है कि इस शहर में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की सेना का केन्द्र होने के कारण उन्हीं की आंखो के सामने कुछ करके दिखाने के लिए मैंने इस स्थान को चुना है. लेकिन यह बात सच नहीं है. मेरा ऐसा उद्देश्य नहीं है. नाक को खुजाकर किसी को भी अपशकुन करने की मेरी कोई इच्छा नही है और न ही मेरे पास ऐसी निरर्थक बातें करने के लिए समय ही है. जो महान् कार्य मैंने अपने कंधो पर लिया है वह इतना महत्वपूर्ण है कि उसके सम्बन्ध में एक मिनट भी मेरे लिए बड़ा महत्व रखता है. इस स्थान को चुनते समय कभी भूल से भी आर.एस.एस. का विचार मेरे मन में नहीं आया.

जिन लोगों ने बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में इस देश के प्राचीनकाल के इतिहास का अध्ययन किया है उन्हे मालूम है कि भगवान् बुद्ध के धर्म को फैलाने का महान श्रेय नाग जाति के लोगों का है. नाग लोग आर्यो के कट्टर शत्रु थे. आर्यो और अनार्यो में आपस में कई बड़ी-बड़ी लड़ाइयां हुई. आर्य लोग नाग लोगों का समूल नाश करना चाहते थे. इस विषय में बहुत सी कहानियां पुराणों में मिलती है. अर्जुन ने नागों को जलाया था. अगस्त मुनि ने एक "सर्प" नाग की रक्षा की थी. उसी के वंशज आप लोग है. जिन नागों को छल और कपट से पतित बनाया गया था, उन्हें उठाने के लिए एक महापुरुष की आवश्यकता थी और वे उन्हें भगवान बुद्ध के रुप में मिले. नागो ने ही सारे भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार किया. आप उन्हीं नागों की संतान हैं. वीर नागों की प्रमुख आबादी नागपुर में थी. नागों की आबादी के कारण इस नगर को नागपुर कहा गया है. इस नागपुर से २७ मील की दूरी पर बहने वाली नदी का नाम भी "नाग" पड़ा हुआ हैं. इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि इसी नदी के आसपास नागों की आबादी थी. नागपुर को इस महान समारम्भ के लिए

चुने जाने के कारण यही है. दूसरा कोई कारण इसके पीछे नहीं है. इसलिए इसे कोई भी गलत न समझे. किसी और बात पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का विरोध सम्भव है लेकिन इस स्थान को किसी ने भी उनको चिढ़ाने के लिए पसन्द नहीं किया है.

जिस महान कार्य को मैने प्रारम्भ किया है और जिसे आप सब लोगों ने स्वीकार किया है उसकी बहुत से समाचार पत्रो ने बहुत ही कटु आलोचना की है. उनके मतानुसार मै अपने बंधुओं को गलत मार्ग पर ले जा रहा हूं. ये अस्पृश्य ऐसे ही अछूत बने रहेंगे. इस धर्मान्तर से हमारा कुछ भी भला नही होगा. कई पत्रों ने तो यहां तक भ्रामक तथा मिथ्या बातें कही है कि आज जो अछूतों को राजनैतिक अधिकार मिले हुए है वे सब धर्मांतर से समाप्त हो जायेंगे. यह सब कुछ पागलपन का प्रचार है. उन लोगों का कहना है कि नये रास्ते से न जाकर पुराने रास्ते से या उसकी पगडंडी से ही हमें जाना चाहिए. सम्भव है कि ऐसे व्यक्तियों का थोड़ा-सा प्रभाव हमारे तरुणों और बुजुर्गो पर अवश्य पड़े, इसलिए मैं इस प्रश्न का जवाब दिए बगैर नहीं रहना चाहता. संशय को दूर करने से हमारे आंदोलन को बल मिलेगा. इसलिए इसी प्रश्न पर मैं बहुत कुछ कहना चाहता हूं.

"महार-चमार मरी हुई गाय-भैंसो को न उठाएं और न मरी हुई गाय-भैंसो के मांस को ही खाएं." इस बात का प्रचार मैंने आज से ३० वर्ष पूर्व किया था. इस प्रचार से सवर्ण हिन्दुओं को बड़ा आघात पहुंचा. मैने उनसे पूछा कि गाय-भैंसो का दूध तुम पिओ और इसके मरने पर उठाकर हम बाहर फेंके. ऐसा क्यों? अगर वे अपनी बूढ़ी मां के मरने पर उसे खुद उठा ले जाते है तो मरी हुई गाय और भैंस को स्वयं क्यों नही उठा ले जाना चाहते? जब मैंने ऐसे प्रश्न उनके सामने रखे तो ये लोग बहुत चिढ़ते. मैने उनसे कहा कि अगर तुम अपनी मरी हुई मां को बाहर फेंकने के लिए हमें दे तो हम अवश्य ही मरी हुई गाय को भी उठा कर ले जायेंगे. इस पर 'केसरी' (ब्राह्मणों का समाचार पत्र) में एक चित्त पावन ब्राह्मण ने कई पत्र प्रकाशित करके यह बताने का प्रयत्न किया कि हर वर्ष मृत पशुओं को न उठाने से महार-चमारों को कितना नुकसान होगा, इसके लिए उन्होंने कई प्रकार के आंकड़े देकर अपनी बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया. उनका कहना था कि एक मरे हुए पशु की हड्डी, दांतों, सींगो, अंतड़ियों आदि के बेचने से हर चमार को ५०० या ६०० रुपयो का वार्षिक लाभ होता है. अतः मैं उसका नुकसान करा रहा हूं. मेरे अस्पृश्य लोगों को ऐसा लगा कि आखिर मै अपने लोगों के लिए क्या करने जा रहा हूं. एक बार मैं संगमनेर (वर्तमान मैसुर प्रान्त में वेलगांव का एक तहसील है) गया हुआ था. वहां पर जिसने 'केसरी' में पत्र प्रकाशित किये थे वह मुझ से मिला. उसने वही प्रश्न दोहराये. मैने उसको जवाब दिया कि तुम्हारे प्रश्नों का जवाब मै समय आने पर दूंगा. मैने 'केसरी' में प्रकाशित हुए सभी पत्रों के प्रश्नों का खुली सभा में यों जवाब दिया कि मेरे लोगों के पास खाने के लिए कपड़ा नही है. स्त्रियों के पास तन ढकने के लिए कपड़ा नही है. रहने के लिए मकान नही है. उनके पास जोतने के लिए जमीन नहीं है. इसलिए वह दलित है. महा दुःखी है. मैंने इसके कारण सभी उपस्थित लोगों से पूछे. सभा में से किसी ने भी उत्तर नहीं दिया. यहां तक कि 'केसरी' में पत्र लिखने वाले सज्जन ने भी जो उस समय सभा में मौजूद थे, उसने भी जवाब नहीं दिया. तब मैंने कहा, भले लोगों! हम अपने संबंध में खुद ही सोच लेंगे. अगर तुम्हे हमारे लाभ की चिन्ता है तो तुम अपने संबंधियो को एक-एक गांव मे

भेज दो और उनसे कहो कि वे वहीं जाकर रहें और गांव मे मरे हुए पशुओं को उठाकर फेंके जिससे उन्हे ५०० रुपये का वार्षिक लाभ हो. इसके अलावा ऐसा करने पर उन्हे ५०० रुपये इनाम में मैं स्वयं दूंगा. इस प्रकार दूगना लाभ होगा. इस मौके को क्यो छोड़ते हो? हमारा नुकसान होगा पर तुम्हें तो लाभ होगा. लेकिन आज तक कोई भी सवर्ण हिन्दू पेट का पानी हमारी उन्नति को देखकर क्यों हिलता है? अपने लोगों के लिए अन्न, वस्त्र, मकान और जमीन के लिए उनकी देखभाल मैं स्वयं करुंगा. इसकी चिन्ता आप न करें.

इस काम को हमने किया तो लाभ होता है और आपने किया तो नुकसान होता है? उठाइये मरे हुए पशुओं को और लीजिए फायदा. इसी प्रकार कुछ लोगों का कहना है कि जब हमें विधान सभा में कुछ स्थान मिले है तो उन्हें हम क्यों छोड़ दे? मैं उनसे कहता हूं कि ब्राह्मण, राजपूत आदि को महार, चमार, भंगी बन कर उन स्थानो को भर लीजिए. हमारे स्थानों के खाली होने पर तुम्हें रोना क्यों आता है? मनुष्य को इज्जत प्यारी है. लाभ प्यारा नही होता. हम सम्मान के लिए संघर्ष कर रहे है.

बंबई में व्यभिचार करने का एक मोहल्ला है. वहां की स्त्रियां सवेरे ८ बजे सोकर उठती है. सवेरे उठते ही ईरानी होटलों में काम करने वाले मुसलमान लड़कों को बुलाकर कहती हैं "ओ सुलेमान! एक प्लेट खीमा और रोटी ले आ," वे खीमा और रोटी खाती है. चाय पीती है, पर हमारी औरतों को तो खीमा-रोटी खाने को नहीं मिलती, केवल चटनी और सूखी रोटी मिलती है. इसी पर वे संतुष्ट है. वे यदि चाहें तो ऐसी बेइज्जती की जिंदगी बिता सकती है, लेकिन उन्हें स्वाभिमान प्यारा हैं, इज्जत प्यारी है. हम जो लड़ रहे है वह सब कुछ इज्जत के लिए लड़ रहें है. मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है - इज्जत से रहना. इसकी पूर्ण प्राप्ति तक जितना अधिक हम आगे जा सकते है, उतना ही आगे जाने की हमारी तीव्र इच्छा है. इसके लिए हम जो कुछ भी त्याग करे वह थोडा है. समाचार पत्रवाले गत चालीस वर्षो से मेरे पीछे पड़े हुए है. अब मै उनसे कहना चाहता हूं कि भाइयो! अब आप कम से कम समझदारी और गंभीर भाषा में बोलिए. हमें आज कुछ और बातों की भी आवश्यकता है. हम लोगों के बौद्ध बन जाने पर वह सब कुछ पूरी होनी चाहिए. मैं सभी

मैने हिन्दू धर्म में जन्म अवश्य लिया है तो भी हिन्दू धर्म में नहीं मरुंगा. ऐसी प्रतिज्ञा मैने आज से २१ वर्ष पूर्व की थी और उसे आज पूरा कर दिखाया. इस धर्मांतर से मैं बड़ा ही खुश हुआ हूं और प्रफुल्लित हो उठा हूं. मुझे ऐसा मालूम हता है कि मै नरक से छुटकारा पा गया हूं. मुझे कोई अन्धभक्त नहीं चाहिए.

कुछ दिलवाऊंगा. ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है. मेरे मरने के बाद क्या होगा इस संबंध में कुछ भी नही कह सकता? इस आंदोलन के लिए बहुत कुछ करना होगा. हमारे बौद्ध धर्म स्वीकार करने पर बहुत कुछ होगा. आपत्तियां आने पर उनका निराकरण किस प्रकार करेंगे, कैसी युक्तियां देनी होगी? इन सभी बातों पर आद्योपांत विचार मैने किया है. इन बातों का जवाब देने के लिए मेरे पास काफी मसाला है. इन अधिकारों को अपने लोगों को मैने ही दिलवाया है और मै ही उन्हे दिलवाऊंगा.

जिसने आपको इन अधिकारो को दिलवाया है वही इन अधिकारों को दिलवायेगा. इसलिए आप मेरे ऊपर पूर्ण विश्वास रखिये और जो कुछ मैं कह रहा हूं उस पर पूर्ण विश्वास रखकर चलिए. विरोधियों की आलोचना में कुछ भी सच्चाई नहीं है. इसलिए उनकी भ्रामक बातों पर विचार भी न करे.

मुझे इस बात को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि हमारे इस धर्म परिवर्तन की बाते सभी जगह हो रही है, लेकिन किसी ने मुझ से यह नही पूछा कि मैने बुद्ध धर्म क्यों स्वीकार किया है? आखिरकार मैने सभी धर्मों को छोड़कर बुद्ध धर्म को ही क्यो अपनाया? धर्मांतर के किसी प्रकार के आंदोलन में यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है. धर्मातर करते समय इस बात का विचार करना चाहिए कि किस धर्म को और क्योंकर अपनाया जाये? मैने हिन्दू धर्म को त्याग करने का आंदोलन १९३५ में शुरु किया था और बराबर इस आंदोलन को चला रहा हूं. येवला (नासिक जिला) में इस आंदोलन को चलाने के लिए अप्रैल १९३५ में बड़ा जलसा किया था कि हम इस हिन्दू धर्म को छोड़ेंगे. मैने उसी समय यह प्रतिज्ञा की थी कि यद्यपि मैने हिन्दू धर्म में जन्म अवश्य लिया है तो भी हिन्दू धर्म में नहीं मरूंगा. ऐसी प्रतिज्ञा मैने आज से २१ वर्ष पूर्व की थी और उसे आज पूरा कर दिखाया. इस धर्मांतर से मै बड़ा ही खुश हुआ हूं और प्रफुल्लित हो उठा हूं. मुझे ऐसा मालूम होता है कि मै नरक से छुटकारा पा गया हूं. मुझे कोई अन्धभक्त नहीं चाहिए. जो लोग बौद्ध धर्म में आना चाहते है उन्हें खूब सोच समझकर आना चाहिए ताकि वे आगे इस धर्म में सुदृढ़ रह सकें.

मनुष्य मात्र की उन्नति के लिए धर्म की आवश्यकता है. मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि कार्ल मार्क्स के सिद्धांतो से एक नया मत निकला है. उनके कथनानुसार धर्म में कुछ भी नहीं है. उनके लिए धर्म का कोई महत्व नही है. उनका धर्म केवल यह है कि उन्हे प्रात:काल मक्खन लगे हुए टोस्ट, दोपहर को खाने के लिए स्वादिष्ट भोजन, सोने के लिए अच्छा बिस्तरा और देखने के लिए सिनेमा चाहिए. यही उनका तत्वज्ञान है. मैं ऐसे तत्वज्ञान का हामी नहीं हूं. मेरे पिता की निर्धनता के कारण मुझे ऐसा कोई सुख नहीं मिला. अपने जीवन में जितना कष्ट मैने सहन किया है उतना किसी ने सहन नही किया होगा. इसलिए गरीबों का जीवन किस प्रकार कष्टमय होता है इसे मै भली प्रकार से जानता हूं. आर्थिक दृष्टिकोण को सामने रखकर हमारा आंदोलन चलना चाहिए. इसलिए मै आज तक अपने लोगों की आर्थिक और मानसिक उन्नति के लिए संघर्ष करता रहा हूं. यही नही बल्कि मानव-मात्र की आर्थिक उन्नति होनी चाहिए.

इस संबंध में मेरे अपने विचार है. पशुओ और मनुष्यों में बड़ा अन्तर है. पशुओं को रोज खाने के लिए चारा चाहिए किन्तु मनुष्य के लिए अन्न चाहिए. पशुओं को चारे के सिवा कुछ और चीज की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु मनुष्य के शरीर के साथ मन भी है. इन दोनो बातो पर विचार करना चाहिए. मन का विकास होना जरुरी है. मन पवित्र और सुसंस्कृत बनाना भी जरूरी है. जिन देशों के लोग यह समझते है कि खाने-पीने का सुसंस्कृत मन के साथ कोई संबंध नही है, ऐसे देश और वहां की जनता से संबंध रखना मेरे लिए लाभदायक नहीं होगा. जनता से संबंध रखते हुए इस बात का भी विचार करना चाहिए कि जिस प्रकार शरीर निरोग होना चाहिए, उसी प्रकार शरीर को सुदृढ़ बनाने के लिए मन का भी सुसंस्कृत होना जरूरी है, अन्यथा यह कहना निरर्थक होगा कि मनुष्य उन्नति कर रहा है.

मनुष्य का शरीर अथवा मन रोगी क्यो रहता है? इसका कारण यह है कि मनुष्य को जब तक शारीरिक पीड़ा रहती है तब तक उसका मन प्रसन्न नही रहता.मन में उत्साह न हो तो अभ्युदय नहीं हो सकता. आखिर यह उत्साह क्यों नही रहता? उसका प्रथम कारण है कि मनुष्य को इस प्रकार विश्वास हो गया है कि उन्हे ऊपर उठने का अवसर नहीं मिल सकता. जब उसके पास आशा नहीं है तब उसके पास उत्साह के लिए स्थान कहां है? वह रोगी है. जिस मनुष्य को अपने कर्म का फल मिलता है, उसी को आनन्द मिलता है. स्कूलों में अगर मास्टर यह कहना शुरु कर दे कि यह कौन है? यह तो चमार है? यह चमार क्यो प्रथम वर्ग में परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है? इसे प्रथम वर्ग किसलिए चाहिए? इसे चौथे वर्ग में उत्तीर्ण होना चाहिए प्रथम वर्ग में उत्तीर्ण होना केवल ब्राह्मणों का काम है. ऐसी परिस्थिति में उस चमार के छात्र को क्या उत्साह मिलेगा? सुकी तरक्की कैसी होगी? उत्साह निर्माण का मूल कारण तो मन है. जिसका शरीर और मन मजबूत होता है वह धैर्यवान होता है. ऐसे व्यक्ति के सामने कोई आपत्ति नही रहती. हर मुसीबत का मुकाबला करने का उसमे आत्म-विश्वास होता है. इसी से उसमें उत्साह पैदा होता है. हिन्दू धर्म का तत्वज्ञान ऐसी असमानता और ऐसे अन्यायपूर्ण सिद्धांतो पर आधारित है कि इस धर्म से किसी को कोई उत्साह आज तक नही मिला. अगर यह धर्म हजारों वर्ष तक भी रहा तो केवल इतना ही होगा कि पेट भरने के लिए कुछ बाबू पैदा होंगे, जो अपने पेट भरने के सिवाय कुछ भी नही कर सकेंगे. फिर ऐसे क्लर्को की रक्षा करने के लिए बड़े क्लर्क की आवश्यकता होगी. आम अछूतो की भलाई कभी नहीं होगी.

मनुष्य के उत्साह का कारण अगर कोई है तो वह है मन. आप मिल के मालिको को जानते है. वे मिलो में मैनेजर नियुक्त करते हैं. उनका काम मिल के मजदूरों से काम लेना होता है. वे मिल के मालिक किसी न किसी व्यसन में फंसे रहते है. क्योंकि उनका मन स्वच्छ और सुसंस्कृत नही

अपने जीवन में जितना कष्ट मैने सहन किया है उनता किसी ने सहन नही किया होगा. इसलिए गरीबों का जीवन किस प्रकार कष्टमय होता है इसे मैं भली प्रकार से जानता हूं. आर्थिक दृष्टिकोण को सामने रखकर हमारा आंदोलन चलना चाहिए.

होता. अपने मन का विकास करने के लिए हमने आंदोलन किया. मैने शिक्षा किस तरह प्राप्त की ? मै गरीबी के कारण लंगोटी लगाकर स्कूल जाता था. स्कूल में मुझे पीने के लिए पानी भी नही मिलता था. पानी के बगैर मैने कई दिन बिताए. बम्बई नगर के एल्फिन्टसन् कालेज में भी यही अवस्था थी. ऐसी परिस्थिति अगर रही तो इससे दूसरी परिस्थिति क्या पैदा हो सकती है? गुलाम क्लर्क ही पैदा होंगे, तब अछूतो की भलाई क्या होगी?

ब्रिटिश राज्य में मै देहली में एक्जीक्यूटिव कौन्सिलर था. उस समय भारत के वाइसराय लार्ड लिनलिथगो थे. उनसे मैने एक दिन कहा कि आप मुसलमानों के नाम पर अलीगढ़ विश्वविद्यालय को तीन लाख रुपये और हिन्दुओं के नाम पर बनारस विश्वविद्यालय को तीन लाख रुपये देते है.

परन्तु हम न तो हिन्दू है और न मुसलमान. अगर हमारे लिए कुछ करना चाहें तो हमारे लिए भी इससे कई गुना खर्च करना पड़ेगा. अगर इतना आप न कर सके तो कम से कम मुसलमानो के लिए जितना आप करते है उतना ही हमारे लिए भी करे. इस संबंध में लिनलिथगो ने मुझे कहा कि मुझे जो कुछ भी उससे कहना है, मै उस लिख कर दूं. उनके कथनानुसार मैने इस संबंध में एक मेमोरेण्डम लिख कर उन्हें दिया. यूरोपियन लोग काफी सहानुभूति रखने वाले होते थे. उन्होंने मेरे कथन को मान लिया, परन्तु इस पैसे को किस प्रकार खर्च किया जाये इसका निर्णय नही हो पाया. उनका विचार था कि पैसे को हमारी अशिक्षित लड़कियों पर खर्च किया जाये. उनके लिए बोर्डिंग खोले जाये और उसी पर यह पैसा खर्च किया जाय. अगर इस पैसे को इस प्रकार खर्च करके हमारी अशिक्षित लड़कियों को शिक्षित किया गया तो उन्हें अच्छा खाना बनाने के लिए अच्छा-अच्छा सामान भी चाहिए. यह सामान कहां से आएगा? क्योंकि हमारी जनता अत्यंत गरीब है. हमारे लोग अपनी शिक्षित लड़कियों की इच्छा पूरी करने के लिए पैसा कहां से लायेंगे? तब इस शिक्षा का परिणाम क्या होगा? अन्य सब बातों पर तो सरकार न पैसा खर्च किया, लेकिन शिक्षा पर होने वाले खर्च को रोके रखा.

एक बार मैं लार्ड लिनलिथगो के पास गया और उनसे मैने खुले दिल से शिक्षा संबंधी खर्चों पर बाते की. उनसे कहा कि अगर आप को गुस्सा न आए तो मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूं. उन्होंने कहा ''हां! पूछिए''. मैने पूछा कि क्या यह सच नही है कि मै अकेला ५०० ग्रेज्युयेटों के बराबर हूं. उन्होंने कहा ''हां, मै मानता हूं'' फिर मैने उनसे पूछा कि इसका क्या कारण है? इस पर उन्होंने कहा कि उन्हें मालूम नही. तब मैने उनसे कहा कि अपनी मेहनत से प्राप्त की हुई मेरी विद्वता इतनी है कि मै इस विद्वता के बल पर शासन के किसी भी पद पर बैठ सकता हूं. मुझे ऐसे ही विद्वान चाहिए, जो जिस प्रकार किले में निशाने पर बैठकर शत्रु को परास्त करते है, इस प्रकार शासन के पदों पर बैठकर मेरे गरीब और निरीह लोगों के देखरेख कर सके. अगर हमारे लोगों की भलाई करनी है तो ऐसे ही लोगों को पैदा करना होगा. तभी इन अछूतो की भलाई हो सकेगी. केवल क्लर्कों के पैदा करने से क्या बनेगा? मेरे इस कथन को लार्ड लिनलिथगो ने माना और उसी वर्ष १६ विद्यार्थियों को ऊंची शिक्षा के लिए विलायत भेजा.

इस देश में हम हजारों वर्षों से बहुत ही निरुत्साही अवस्था में रहते चले आ रहे है. जब तक यह अवस्था रहेगी तब तक अपनी उन्नति के लिए हम में उत्साह होना असम्भव है. अन्याय और असमानता पर आधारित इस हिन्दू (ब्राह्मण) धर्म में रहकर हम कुछ भी नहीं कर सकते. मनुस्मृति में चातुर्वर्ण का कथन है. यह चातुर्वर्ण व्यवस्था मनुष्य मात्र की उन्नति के लिए महाघातक है. शुद्रों का काम केवल सेवा ही करना है. उन्हे शिक्षा से क्या तात्पर्य? इस समस्या का हल कौन करेगा? ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को शूद्रो की गुलामी से हर प्रकार का फायदा है. शूद्रो के पास गुलामी के सिवा और है क्या? चातुर्वर्ण व्यवस्था फूंकर मारने से उड़ाई नही जा सकती. यह केवल रुढ़ि नहीं है बल्कि धर्म बन गई है.

हिन्दू धर्म कोई समानता नही है. मै एक बार गांधीजी से मिलने गया. गांधी जी ने मुझसे कहा कि वे चातुर्वर्ण को मानते है, लेकिन यह चातुर्वर्ण कौन सा और कैसा? इस बात को समझाने

के लिए मैने अपनी अंगुलियों को एक के ऊपर एक करके बताते हुए कहा कि यह चातुर्वर्ण सीधा है या उल्टा? इसका आदि और अन्त कहा है? गांधी जी इस बात का जवाब नहीं दे सके., जिन लोगों ने हमारा नाश किया है, उनका यह अन्यायपूर्ण धर्म इनके सामने ही नष्ट होगा. मै हिन्दू धर्म पर बेकार ही आरोप नहीं लगाता. इस पापमयी धर्म में किसी का भी उद्धार नही हो सकता. यह धर्म नष्ट हो चुका है. इसमें कोई जान नही है.

हमारा देश विदेशियो का गुलाम क्यो बना? योरोप में १९३९ से १९४५ तक दूसरा महायुद्ध हुआ. जितनी फौज लड़ाई में मरती थी, उतनी फौज रोज भर्ती हो जाती थी. उस समय किसी ने यह नहीं कहा कि युद्ध जीतने का श्रेय किसी एक को ही प्राप्त है. यह सभी देशवासियों का महान श्रेय था.हमारे देश की बाते निराली रही है. क्षत्रिय मर गये कि सारा देश मर गया. यही होता रहा है. इसलिए देश कई बार गुलाम बना. अगर हम लोगों को शस्त्र धारण करने का अधिकार होता तो यह महान देश कभी भी गुलाम न बनता और न कोई इस देश को आक्रमण से जीत ही सकता था.

हिन्दू धर्म में रहकर किसी का उद्धार नहीं होगा. हिन्दू धर्म की रचना के अनुसार कुछ तथाकथित सवर्णों को सदियों से लाभ पहुंच रहा है. मेरे इस कथन में तिलमात्र भी झूठ नहीं है. शूद्रों और अछूतों की क्या भलाई हई? ब्राह्मणों की औरत गर्भवती हुई कि उसका ध्यान हाईकोर्ट की ओर जाता है आया वहां पर कोई जज का पद खाली है या नहीं? और जब हमारी औरत गर्भवती होती है तब उसका ध्यान इस बात की ओर जाता है कि कमेटी में कोई जगह झाडू देने वाले के लिए खाली है या नहीं? यह दुरावस्था हिन्दू धर्म की व्यवस्था के कारण ही है. इसमें रहकर हमारी क्या

मैं एक बार गांधीजी से मिलने गया. गांधीजी ने मुझसे कहा कि वे चातुर्वर्ण को मानते हैं, लेकिन यह चातुर्वर्ण कौन सा और कैसा? इस बात को समझाने के लिए मैंने अपनी अंगुलियों को एक के ऊपर एक करके बताते हुए कहा कि यह चातुर्वर्ण सीधा है या उल्टा? इसका आदि और अन्त कहां है? गांधी जी इस बात का जवाब नहीं दे सके.

भलाई हो सकेगी. अगर हमारी भलाई होगी तो केवल बौद्ध धर्म में ही होगी.

भगवान् के धर्म को ब्राह्मणों ने भी अपनाया और शूद्रों ने भी. उन सभी भिक्षुओं को आदेश देते हुए भगवान् ने कहा था कि -

"हे भिक्षुओं! आप लोग कई देशों और कई जातियों से आए हुए है. जिस प्रकार आपके देश-प्रदेश में अनेक नदियां बहती है और उनका अलग अस्तित्व दिखाई देता है. जब ये सागर में मिलती है तब अपने पृथक अस्तित्व को खो बैठती हैं. वे सब समुद्र में समा जाती हैं. बौद्ध संघ समुद्र की ही भांति है. इस संघ में सभी एक हैं और सभी बराबर हैं. समुद्र में गंगा या यमुना के मिल जाने पर उसके पानी को अलग पहचानना कठिन है. इसी प्रकार आप लोगों के बौद्ध संघ में आने पर सभी एक है. सभी समान हैं. इस प्रकार की बातें कहने वाला एक ही महापुरुष हुआ

है और वह महापुरुष भगवान बुद्ध हैं.

जब लोग मुझसे यह प्रश्न पूछते हैं कि धर्मांतर करने के लिए इतना समय क्यों लगाया? इतने दिन तक मैं क्या कर रहा था ? ये प्रश्न महत्वपूर्ण हैं. धर्म के तत्वों को दूसरों को समझाना आसान काम नहीं है. एक मनुष्य का काम भी नहीं है. धर्म के संबंध में आप विचार करके देखेंगे तो मेरी बात आपकी समझ में आ जायेगी. आज मेरे ऊपर कितनी जिम्मेदारी है, उतनी संसार में किसी पर नहीं है , अगर मैं ज्यादा साल जीवित रहा तो वह सब काम पूरा करके दिखाऊंगा.

(बाबा साहेब जिन्दाबाद के नारों से आकाश गूंज उठा)

कुछ लोग कहेंगे कि अछूतों के बौद्ध बनने पर क्या होगा? इस संबंध में मेरा इतना ही कहना है कि इस प्रकार का प्रश्न आप लोगों को नही पूछना चाहिए, क्योंकि ऐसे धूर्ततापूर्ण हैं. अमीर लोगों को धर्म की आवश्यकता नहीं है. उनमें जो लोग ऊंचे पदों पर हैं उनके पास रहने के लिए अच्छा बंगला है. उनकी सेवा करने के लिए उनके पास धन है. उनके पास नौकर-चाकर हैं और उनके पास सब कुछ है ऐसे लोगों को धर्म को अपनाने या उस पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है.

धर्म की आवश्यकता केवल गरीबों के लिए होती है. दु:खी और पीड़ित लोगों के लिए धर्म की जरूरत होती है. गरीब मनुष्य सदा ही आशा पर जीवित रहता है. जीवन का मूल आशा में हे. अगर यह आशा नष्ट हो गई तो जीवन कैसे चलेगा? धर्म हर एक को आशावादी बनाता है. गरीबों और पीड़ितों को सही संदेश देता है कि "घबराने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि जीवन आशादायक है और होगा. "यही कारण है कि गरीब या पीड़ित व्यक्ति धर्म को चिपकाकर रखता है.

जब योरोप में ईसाई धर्म का प्रचार हुआ उस समय रोम के आसपास सभी देशों की अवस्था बड़ी खराब थी. लोगों को पेट भरने के लिए लोगो में खिचड़ी बांटी जाती थी. उस समय इन लोगों में ईसाई मत का प्रचार हुआ. दु:खी और पीड़ित लोग इस धर्म के अनुयायी बने. श्री गिबन ने एक बार कहा था कि यह ईसाई धर्म भिखारियों का धर्म है. ईसाई धर्म यूरोप का धर्म बन गया है. इसका जवाब देने के लिए श्री गिबन आज जीवित नहीं है. अगर वे जीवित होते तो शायद अपनी बात का जवाब वे खुद ही पा लेते.

कुछ लोग यह अवश्य कहेंगे कि यह बौद्ध धर्म भंगी-चमारों का धर्म है. ब्राह्मण लोग भगवान् को भी "भो, गौतम !" कहकर पुकारते थे. ब्राह्मण भगवान् को इस प्रकार अपशब्द कहकर चिढ़ाया करते थे. लेकिन आप यह जानते हैं कि विदेशों में राम कृष्ण और शंकर की मूर्तियों को खरीदने के लिए रखा जाय तो कोई नहीं खरीदेगा. अगर बुद्ध की मूर्ति रखी जाय तो एक भी मूर्ति नही बचेगी. भारत में जो होना था वह बहुत कुछ होता रहा. कुछ बाहर भी देखो. बाहर अगर किसी का नाम प्रसिध्द है तो वह केवल भगवान बुद्ध का. फिर यह धर्म फैले बगैर कैसे रहेगा?

हम अपने मार्ग से जरूर जायेंगे. वे अपनी राह से जाएं, हमें नया रास्ता मिला है. यह आशा का प्रतीक है. अभ्युदय और उत्कर्ष का महान मार्ग है. यह मार्ग नया नहीं है. इसे हम कहीं से लाए

नहीं है. यह श्रेष्ठ मार्ग यहीं का है. यह भारतीय है. इस देश में २००० वर्ष पूर्व भी बौद्ध धर्म था. इसका हमें दु:ख है कि हमने इस धर्म को पहले ही क्यों नहीं अपनाया? भगवान बुध्द ने अपने सिद्धांतो के अपरिवर्तनीय होने का दावा नहीं किया. इस धर्म में समयानुसार बदलने की शक्ति है. इतनी उदारता किसी अन्य धर्म में नहीं है.

इस देश से बौद्ध धर्म के नाश का मुख्य कारण इस देश पर मुसलमानों का अमानवीय आक्रमण था. इस आक्रमण में हजारों मूर्तियां तोड़ी गई. भिक्षु मारे गए. इन आक्रमणों से घबरा कर बौद्ध भिक्षु दूसरे देशों में भाग गये. कोई तिब्बत गए, कोई चीन चले गए कोई कहीं गया और कोई कहीं. इसका परिणाम यह हुआ कि यहां पर भिक्षुओं का अभाव हो गया. उत्तर पश्चिम प्रांत में एक ग्रीक राजा था. उसका नाम था मिलिन्द (मिनांडर) उसे धर्म चर्चा बड़ी पसंद थी. उसने हिन्दू धर्म शास्त्रों के पंडितों के साथ कई बार वाद-विवाद करके उन्हें हराया था. और कईयों को निरुत्तर कर दिया था. एक दिन उसने चाहा कि बौद्ध धर्म के विद्वानों के साथ वाद-विवाद करे. इसलिए अपने नौकरों को आदेश दिया कि जब कभी उनके राज्य में कोई बौद्ध धर्म का पंडित आए तो उसे उनके राज्य में कोई बौद्ध धर्म का पंडित आए तो उसे उनके पास लाय जाए. तब स्थानीय बौद्ध मतावलम्बियों ने महापंडित और धर्म - धुरन्धर भिक्षु नागसेनजी से प्रार्थना की कि वे राजा के पास जाकर वाद-विवाद में बौद्ध धर्म का मंडन करें. भिक्षु नागसेन बड़े विद्वान थे. नागसेन और मिलिन्द में जो पारस्परिक वाद-विवाद हुआ उसे सबको पुस्तकाकार रूप में छापा गया है. मिलिन्द ने एक प्रश्न किया कि धर्म का ह्रास क्यों होता है? नागसेन ने इसका उत्तर देते हुए इसके तीन कारण बताए, पहला यह कि सच्चा धर्म ही सदा बना रहता है, जिस धर्म के मूल में गंभीरता नहीं होती वह धर्म केवल काल धर्म होता है और समय बीतने पर ऐसा धर्म नहीं टिकता. दूसरा कारण यह होता है कि जब धर्म प्रचार करने वाले विद्वान ही नहीं रहते तब धर्म का ह्रास होता है, ज्ञानी लोगों को धर्म ज्ञान की चर्चा करनी ही चाहिए, विरोधियों के वाद-विवाद का खण्डन करने के लिए धर्म के प्रचारक न हों तो धर्म की ग्लानि होती है. तीसरा कारण यह है कि धर्म और धर्म के तत्व विद्वानों के लिए होते है. साधारण लोगों के लिए मंदिर या विहार होते हैं जहां पर जाकर जनता अपनी श्रेष्ठ विभूतियों

विदेशों में राम, कृष्ण और शंकर की मूर्तियों को खरीदने के लिए रखा जाय तो कोई नहीं खरीदेगा. अगर बुद्ध की मूर्ति रखी जाय तो एक भी मूर्ति नहीं बचेगी. भारत में जो होना था वह बहुत कुछ होता रहा. कुछ बाहर भी देखो. बाहर अगर किसी का नाम प्रसिध्द है तो वह केवल भगवान बुध्द का. फिर यह धर्म फैले बगैर कैसे रहेगा?

की पूजा करती है.

आप लोगों को इस महान बौद्ध धर्म को स्वीकार करते हुए इन बातों का ध्यान रखना चाहिए, बौद्ध धर्म के तत्व केवल कुछ समय के लिए ; ऐसा कभी नहीं समझना चाहिए, आज २५०० वर्षों के बाद भी बुद्ध तत्वों को सारा संसार मानता है.

अमेरिका में बुद्ध धर्म के अनुयाइयों की २००० संस्थाएं हैं. इंग्लैंड में तीन लाख रूपये खर्च करके बौद्ध विहार बनाया गया है. जर्मनी में तीन-चार हजार बौद्ध संस्थाएं है. बुद्ध तत्व अजर अमर हैं. फिर भी बुद्ध ने अपने तत्वों के महान होने का दावा नहीं किया. और न उन्होंने कभी यह कहा कि उनका धर्म ईश्वरीय है. भगवान ने तो यही कहा था कि मेरा पिता और मेरी माता दोनों सामान्य मनुष्यों की भांति है. जिन्हे वह धर्म अच्छा लगे वे इसे अपनाएं, क्योंकि इतनी उदारता की बातें आपको किसी दूसरे धर्म में नहीं मिलेंगी.

दूसरे धर्मों और बौद्ध धर्मों में महान अंतर है. बौद्ध धर्म की महान और मूल आधार की बातें आपको दूसरे धर्मों में नहीं मिलेंगी क्योंकि दूसरे धर्म मनुष्य और ईश्वर के गहरे संबंध को बताते है. दूसरे धर्म कहते हैं कि ईश्वर ने संसार की रचना की है. उसी ने ही आकाश, वायु, चन्द्र, सूरज और सब कुछ पैदा किया है, ईश्वर ने सब कुछ हमारे लिए कर दिया है. कुछ शेष नहीं रखा है. इसलिए हम ईश्वर की (उपासना और भजन ही करते रहें. ईसाई धर्म के अनुसार मरने के बाद एक निर्णय का दिन (Day of Judgement) होगा. उसी के निर्णय अनुसार सब कुछ निर्धारित होगा.

ईश्वर और आत्मा के लिए बौद्ध धर्म में कोई स्थान नहीं है. भगवान बुद्ध ने कहा है कि संसार में सब जगह दु:ख ही दु:ख है, नब्बे प्रतिशत लोग दु:खी है पीड़ित है, दु:ख से पीड़ित गरीब लोगो का उद्वार करना ही बौद्ध धर्म का मुख्य ध्येय है. कार्ल मार्क्स ने भगवान बुद्ध से ज्यादा कुछ नहीं कहा है. भगवान बुद्ध ने जो कुछ कहा है वह सब सरल और सीधा मार्ग है.

भाइयों और बहिनों! जो कुछ कहना था वह सब कुछ मैंने कह दिया. यह धर्म सबसे अच्छा धर्म है. उसमें कोई दोष नहीं है. हिन्दू धर्म में कुछ ऐसे तत्व है कि जिनसे किसी को उत्साह नहीं मिल सकता. हजारों वर्षों से लेकर आज तक अपने समाज में किसी को भी विद्वान नहीं बनने दिया गया. आप लोगों के सामने मुझे अपनी बचपन की बातें बताते हुए किसी प्रकार की झिझक नहीं होती. मेरे स्कूल में एक अब्राह्मण (मराठा) औरत थी. पोस्टमैन को मैं "मामा" कहकर पुकारा करता था. स्कूल में एक दिन मुझे प्यास लगी. इसके लिए मैंने अपने मास्टर से कहा. मास्टर ने चपरासी को बुलाकर कहा कि इसे नल पर जाकर पानी पिला लाओ, चपरासी ने नल खोल तो मैंने पानी पिया. अगर कभी चपरासी न हुआ तो कई-कई दिन तक पानी पीने को ही नही मिलता था. प्यासा ही घर वापस आता और घर पर ही आकर प्यास को बुझाता. जब मैं पढ़कर वापस आया तब मुझे डिस्ट्रिक्ट जज बनने के लिए कहा गया. लेकिन इस रस्सी को मैने अपने गले में इसलिए नहीं बंधवाया कि मेरे नौकर हो जाने पर मेरे लोगों की सेवा कौन करेगा? इसी विचार को ध्यान में रखते हुए मैं नौकरी के चक्कर में नहीं पड़ा.

व्यक्तिगत रूप से इस देश की किसी भी 'रूढ़ि' या बात का विरोध करना मेरे लिए कठिन नहीं है. आप लोगों के सिर पर वैश्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने पहाड़ खड़ा किया हुआ है. उसको किस प्रकार उलटा जाये या तोड़ा जाये यह एक वास्तविक प्रश्न है? इसलिए मैं चाहता हूं कि इस धर्म का पूर्ण ज्ञान कराऊं. यह मेरा कर्तव्य भी है. इस कार्य के लिए मैं पुस्तकें लिखकर और आप लोगों की शंकायें दूर करके पूर्ण ज्ञान प्राप्त कराऊंगा. आज आप मुझ पर विश्वास रखकर चलिये.

आप पर अब काफी जिम्मेदारी आ पड़ी है. यह बड़ी भारी जीच है. आप लोगों को ऐसे काम करने चाहिएं जिससे सभी आपका आदर करें. आप इस धर्म को ऐसा न समझे कि आपने गले में एक मिट्टी का घड़ा बांध लिया है. बौद्ध धर्म की दृष्टि से भारत की भूमि अब सुनसान जंगल की भांति है, इसलिए आपका परम कर्तव्य है कि आप इस पवित्र धर्म को उत्तम रीति से पालने की प्रतिज्ञा करें, अन्यथा इस धर्म-परिवर्तन की निंदा होगी. आज आप सभी प्रतिज्ञा करें कि आप सब बौद्ध न केवल अपना बल्कि अपने साथ साथ अपने देश का और इसके साथ-साथ सारे संसार का भी उद्धार करेंगे. संसार का उद्धार बौद्ध धर्म से ही होगा. संसार में जब तक न्याय को स्थान नहीं मिलेगा. तब तक शाति नहीं हो सकती.

यह नया काम बहुत जिम्मेदारी का काम है. इसे पूरा करने के लिए आपने दृढ़ संकल्प किया है. हमारे नौजवानों को बहुत कुछ करना है. इस बात को पूर्ण-रूप से आपको ध्यान में रखना चाहिए, आप लोग केवल पेट के ही पुजारी न बनें. आप कम से कम अपनी आमदनी का २० वां भाग इस पवित्र धर्म-प्रचार के लिए दान देने का निर्णय करे. मुझे आप सबको अपने साथ ले जाना है. तथागत ने पहले-पहल कुछ ही लोगों को दीक्षा दी और उसी समय उनको आदेश दिया कि वे इस पवित्र धर्म का प्रचार करे. उसके बाद यश नामक एक विद्वान और ४० व्यक्तियों ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली. यश भी अमीर घराने के थे. इनसे भगवान ने कहा कि यह धर्म ''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय लोगनुकम्पाय आदि कल्याणं, मध्ये कल्याणं, पर्यवसान कल्याणं अर्थात् बहुत जनों के हित के लिए है, बहुत जनों के सुख के लिए है और सब लोगों पर अनुकम्पा के लिए है. यह आदि, मध्य और अन्त में कल्याण कारक है.'' भगवान ने परिस्थति के अनुसार धर्म-प्रचार के ढंग को अपनाया. अब हमें भी अपने समयानुसार इस धर्म के प्रचार का ढंग अपनाना होगा. इस देश में भिक्षु नहीं है. इसलिए आप में से हर एक को इस धर्म की दीक्षा स्वयं लेनी होगी. इस बात की मैं पूर्ण घोषणा करता हूं कि बौद्ध धर्मानुयायी प्रत्येक व्यक्ति को दूसरों को भी त्रिशरणं पंचशील एवं २२ प्रतिज्ञाओं सहित बौद्ध धर्म में दीक्षित करने का पूर्ण अधिकार है.

●●●



बौद्धों की २२ -प्रतिज्ञाएं

१. मैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश को कभी ईश्वर नहीं मानूंगा और न मैं उनकी पूजा करूंगा.

२. मैं राम और कृष्ण को ईश्वर नहीं मानूंगा और उनकी पूजा कभी नहीं करूंगा.

३. मैं गोरी, गणपति, इत्यादि हिन्दू धर्म के किसी भी देवी देवताओं को नहीं मानूगां और न ही उनकी पूजा करूंगा.

४. मैं ईश्वर ने कभी अवतार लिया है इस पर विश्वास नही करूंगा.

५. मैं भगवान बुद्ध विष्णु का अवतार है इसे कभी नहीं मानूंगा. मैं ऐसे प्रचार को पागलपन और झूठा प्रचार समझता हूं.

६. मैं श्राद्ध कभी नहीं करूंगा और न ही कभी पिंडदान दूंगा.

७. मैं बौद्ध धर्म के विरूद्ध किसी भी बात को नहीं करूंगा.

८. मैं कोई भी क्रिया कर्म ब्राह्मणों के हाथों से नहीं कराऊंगा.

९. मैं सभी मनुष्य एक हैं: इस सिद्धांत को मानूंगा.

१०. मैं समानता की स्थापना के लिए प्रयत्न करूंगा.

११. मैं भगवान बुद्ध के अष्टांग मार्ग का पूर्ण पालन करूंगा.

१२. मै भगवान बुद्ध के बताए हुए इस पारमिताओं का पूर्ण पालन करूंगा.

१३. मैं प्राणी मात्र पर दया रखूंगा और उनका लालन- पालन करूंगा.

१४. मैं चोरी नहीं करूंगा.

१५. मैं झूठ नहीं बोलूंगा.

१६. मैं व्याभिचार नहीं करूंगा.

१७. मैं शराब नहीं पीऊंगा.

१८. मैं अपने जीवन को बौद्ध धर्म के तीन तत्व अर्थात ज्ञान, शील और करूणा पर ढालने का प्रयत्न करूंगा.

१९. मैं मनुष्य मात्र के उत्कर्ष के लिए हानिकारक और मनुष्य मात्र को असमान और नीच मानने वाले अपने पुराने हिन्दू धर्म का पूरी तरह त्याग करता हूं और बुद्ध धर्म को स्वीकार करता हूं.

२०. मेरा ऐसा पूर्ण विश्वास है कि बौद्ध धर्म ही संध्दर्म है.

२१. मैं यह मानता हूं कि मेरा पुनर्जन्म हो रहा है.

२२. मैं यह पवित्र प्रतिज्ञा करता हूं कि आज से मैं बौद्ध धर्म की शिक्षा के अनुसार आचरण करूंगा.

“Wherever the Buddha’s teachings have flourished,
either in cities or countrysides,
people would gain inconceivable benefits.
The land and people would be enveloped in peace.
The sun and moon will shine clear and bright.
Wind and rain would appear accordingly,
and there will be no disasters.
Nations would be prosperous
and there would be no use for soldiers or weapons.
People would abide by morality and accord with laws.
They would be courteous and humble,
and everyone would be content without injustices.
There would be no thefts or violence.
The strong would not dominate the weak
and everyone would get their fair share.”

※ THE BUDDHA SPEAKS OF
THE INFINITE LIFE SUTRA OF
ADORNMENT, PURITY, EQUALITY
AND ENLIGHTENMENT OF
THE MAHAYANA SCHOOL ※

With bad advisors forever left behind,
From paths of evil he departs for eternity,
Soon to see the Buddha of Limitless Light
And perfect Samantabhadra's Supreme Vows.

The supreme and endless blessings
of Samantabhadra's deeds,
I now universally transfer.
May every living being, drowning and adrift,
Soon return to the Pure Land of
Limitless Light!

~The Vows of Samantabhadra~

I vow that when my life approaches its end,
All obstructions will be swept away;
I will see Amitabha Buddha,
And be born in His Western Pure Land of
Ultimate Bliss and Peace.

When reborn in the Western Pure Land,
I will perfect and completely fulfill
Without exception these Great Vows,
To delight and benefit all beings.

~The Vows of Samantabhadra
Avatamsaka Sutra~

DEDICATION OF MERIT

May the merit and virtue
accrued from this work
adorn Amitabha Buddha's Pure Land,
repay the four great kindnesses above,
and relieve the suffering of
those on the three paths below.
May those who see or hear of these efforts
generate Bodhi-mind,
spend their lives devoted to the Buddha Dharma,
and finally be reborn together in
the Land of Ultimate Bliss.
Homage to Amita Buddha!

NAMO AMITABHA
南無阿彌陀佛

【印度 HINDI 文：BUDDHA AND HIS DHAMMA IN THE FUTURE & THE SPEECHES OF DR. AMBEDKAR】

財團法人佛陀教育基金會　印贈
台北市杭州南路一段五十五號十一樓

Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org
Mobile Web: m.budaedu.org

This book is strictly for free distribution, it is not for sale.

यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नही ।

Printed in Taiwan
3,000 copies; April 2015
IN038-13138